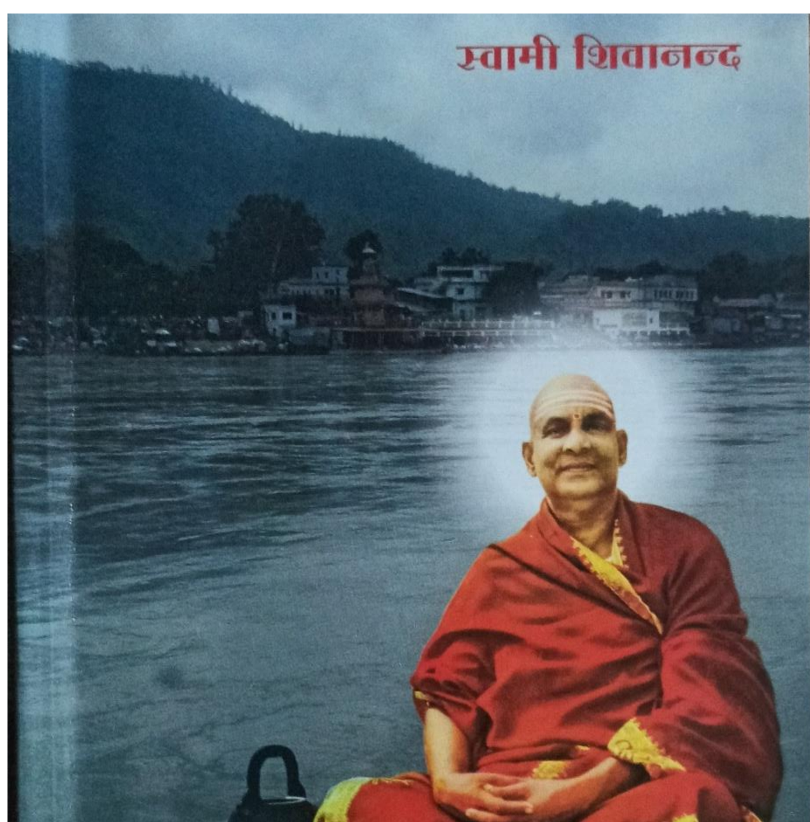


योगवासिष्ठ की कथाएँ

STORIES FROM YOGA-VASISHTHA
का हिन्दी अनुवाद

लेखक
श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

अनुवादिका
श्री स्वामी विष्णुशरणानन्द सरस्वती
(पूर्वाश्रम-नाम : डा. स्वर्णलता अग्रवाल)

प्रकाशक
द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय: शिवानन्दनगर - २४९१९२
जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम हिन्दी संस्करण २००९
द्वितीय हिन्दी संस्करण : ? २०१३
तृतीय हिन्दी संस्करण : २०१५

(१,००० प्रतियाँ)

HS16

PRICE: 90/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा
प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस,
पो. शिवानन्दनगर-२४९१९२, जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit: dlsbooks.org

सन्त वसिष्ठ

और

महर्षि वाल्मीकि को

समर्पित !

शिवानन्दनगर
२४ दिसम्बर १९५८

प्रिय जिज्ञासु,

योगवासिष्ठ इस विश्व की एक उत्कृष्ट पुस्तक है। केवल अद्वैत ब्रह्म का ही अस्तित्व है। यह विश्व तीनों कालों में नहीं है। केवल आत्मज्ञान ही मनुष्य को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त करेगा।

वासनाओं का नाश ही मोक्ष है। मन ही संकल्प से इस सृष्टि को उत्पन्न करता है।

क्षुद्र अहं 'मैं', वासनाओं और संकल्पों का नाश करो।

आत्म-तत्त्व का ध्यान करो और जीवन्मुक्त बनो। यही योगवासिष्ठ का सार है।

-- स्वामी शिवानन्द

प्रकाशकीय

योगवासिष्ठ अथवा वासिष्ठ महारामायण संस्कृत भाषा में वेदान्त पर लिखा गया सर्वोत्कृष्ट कोटि का ग्रन्थ है। यह विशाल ग्रन्थ संस्कृत साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ है। महान् सन्त वसिष्ठ ने अपने शिष्य श्री राम, जो रावणजयी हैं और रामायण महाकाव्य के नायक हैं, को वेदान्त के सिद्धान्तों की शिक्षा दी। उन्होंने उन सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए सुन्दर एवं रोचक कथाएँ कही। यह ग्रन्थ सन्त वाल्मीकि द्वारा भाषाबद्ध किया गया है।

यह वेदान्त पर लिखे गये सभी ग्रन्थों का चूड़ामणि है। यह सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसका अध्ययन मनुष्य को दिव्य वैभव एवं आनन्द की उच्चावस्था तक पहुँचा देता है। यह ज्ञान का भण्डार है। जो आत्म-चिन्तन अथवा ब्रह्म अभ्यास अथवा वेदान्तिक ध्यान का अभ्यास करते हैं, वे इस अद्‌भुत ग्रन्थ में अमूल्य निधि पायेंगे। जो मनुष्य एकाग्र चित्त हो कर एवं अत्यधिक रुचिपूर्वक इसका अध्ययन करता है, वह निश्चित ही आत्मज्ञान प्राप्त करेगा। साधना से सम्बन्धित व्यावहारिक निर्देश अद्वितीय हैं। अत्यधिक सांसारिक मनुष्य भी वैराग्यवान् बनेगा और मन की शान्ति, उपशम और सान्त्वना प्राप्त करेगा।

योगवासिष्ठ के अनुसार, मोक्ष आत्मज्ञान द्वारा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है। यह जन्म व मृत्यु से मुक्ति है। यह वह निर्मल और अविनाशी ब्रह्म-पद है जहाँ न तो संकल्प हैं और न वासनाएँ। मन यहाँ शान्ति प्राप्त कर लेता है। मोक्ष के अनन्त आनन्द के समक्ष संसार के समस्त सुख मात्र एक बूंद हैं।

आप सभी योगवासिष्ठामृत का पान करें ! आप सभी आत्मज्ञान-रूपी मधु का आस्वादन करें! आप सभी इसी जन्म में जीवन्मुक्त बन जायें! आपको सन्त वसिष्ठ, सन्त वाल्मीकि एवं अन्य ब्रह्मविद्या-गुरुओं का आशीर्वाद प्राप्त हो! आप सभी ब्रह्मानन्द-रस का आनन्द प्राप्त करें!

-द डिवाइन लाइफ सोसायटी

परिचय

योगवासिष्ठ अथवा वासिष्ठ महारामायण संस्कृत भाषा में वेदान्त पर लिखा गया सर्वोत्कृष्ट कोटि का ग्रन्थ है। यह विशाल ग्रन्थ संस्कृत साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ है। महान् सन्त वसिष्ठ ने अपने शिष्य श्री राम, जो रावणजयी हैं और रामायण महाकाव्य के नायक हैं, को वेदान्त के सिद्धान्तों की शिक्षा दी। उन्होंने उन सिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए सुन्दर एवं रोचक कथाएँ कहीं। यह ग्रन्थ सन्त वाल्मीकि द्वारा भाषाबद्ध किया गया है।

यह वेदान्त पर लिखे गये सभी ग्रन्थों का चूड़ामणि है। यह सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसका अध्ययन मनुष्य को दिव्य वैभव एवं आनन्द की उच्चावस्था तक पहुँचा देता है। यह ज्ञान का भण्डार है। जो आत्म-चिन्तन अथवा ब्रह्म अभ्यास अथवा वेदान्तिक ध्यान का अभ्यास करते हैं, वे इस अद्‌भुत ग्रन्थ में अमूल्य निधि पायेंगे। जो मनुष्य एकाग्र चित्त हो कर एवं अत्यधिक रुचिपूर्वक इसका अध्ययन करता है, वह निश्चित ही आत्मज्ञान प्राप्त करेगा। साधना से सम्बन्धित व्यावहारिक निर्देश अद्वितीय हैं। अत्यधिक सांसारिक मनुष्य भी वैराग्यवान् बनेगा और मन की शान्ति, उपशम और सान्त्वना प्राप्त करेगा।

एक समय भारत में योगवासिष्ठ का अध्ययन बहुत व्यापक स्तर पर किया जाता था। इसने सामान्य दार्शनिक विचारधारा को अत्यन्त प्रभावित किया। बनारस के स्वर्गीय पण्डित वृन्दावन सरस्वती ने एक सौ पैंसठ बार योगवासिष्ठ का अध्ययन किया। यह प्राचीन भारत की एक विस्तृत, गम्भीर, व्यवस्थित साहित्यिक एवं दार्शनिक कृति है।

इसका नाम सन्त वसिष्ठ से व्युत्पन्न है। यद्यपि यह ग्रन्थ योगवासिष्ठ कहा जाता है, परन्तु यह केवल 'ज्ञान' से सम्बन्धित है। केवल दो कथाएँ ही क्रियायोग से सम्बन्धित हैं। ग्रन्थ के शीर्षक में प्रयुक्त योग शब्द का व्यापक अर्थ लिया गया है। यह 'ज्ञानवासिष्ठम्' नाम से भी प्रसिद्ध है।

ऋषि वाल्मीकि, रामायण के रचयिता, ने इस असाधारण ग्रन्थ का संकलन किया। उन्होंने सम्पूर्ण 'योगवासिष्ठ ऋषि भारद्वाज को सुनाया जैसा कि सन्त वसिष्ठ ने श्री राम को वर्णन किया।

बृहत् योगवासिष्ठ एवं लघु योगवासिष्ठ नामक दो पुस्तकें हैं। पहली पुस्तक अत्यन्त विशाल है। इसमें ३२,००० ग्रन्थ अथवा श्लोक अथवा ६४,००० पंक्तियाँ हैं। बृहत् अर्थात् विशाल। दूसरी पुस्तक में ६००० ग्रन्थ हैं। लघु अर्थात् छोटा।

योगवासिष्ठ में प्राचीन दार्शनिक विचारधारा की एक अद्वितीय पद्धति समाहित है। यह ग्रन्थ इस पवित्र भूमि, जो कि भारतवर्ष अथवा आर्यावर्त नाम से जानी जाती है, के उज्ज्वल अतीत की मूल्यवान् धरोहर है। इस ग्रन्थ में प्रस्तुत विचार-पद्धति न केवल भारतीय दार्शनिक विचारधारा, अपितु विश्व की दार्शनिक विचारधारा के प्रति एक अत्यन्त मूल्यवान् योगदान है।

वे मनुष्य, जिनके चित्त संसार से विमुख हो गये हैं, जो सांसारिक पदार्थों के प्रति उदासीन हो गये हैं और जो मुमुक्षु हैं, इस बहुमूल्य ग्रन्थ के अध्ययन से यथार्थतः लाभान्वित होंगे। वे इस ग्रन्थ में अपने दैनिक जीवन में मार्गदर्शन हेतु ज्ञान एवं व्यावहारिक आध्यात्मिक निर्देशों का भण्डार पायेंगे। योगवासिष्ठ प्रथमतः एक सिद्धान्त का विविध रूपों में प्रतिपादन करता है और तत्पश्चात् रुचिकर कथाओं के माध्यम से इसे अत्यन्त सरल बोधगम्य बना देता है। यह ग्रन्थ निरन्तर तथा बारम्बार अध्ययन करने योग्य है। इसका पुनः पुनः अध्ययन किया जाना चाहिए और दक्षता प्राप्त की जानी चाहिए।

जीवन के समस्त कष्टों एवं विपत्तियों के मध्य जीवात्मा का परमात्मा से योग करवाना ही योगवासिष्ठ का प्रतिपाद्य विषय है। यह जीवात्मा के परमात्मा से योग के लिए विविध दिशा-निर्देश देता है।

इस ग्रन्थ में ब्रह्म अर्थात् सत् के स्वरूप एवं आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने की विविध विधियों का सुस्पष्ट वर्णन किया गया है। परमानन्द अथवा परमार्थ-प्राप्ति से सम्बन्धित मुख्य परिपृच्छा का सुन्दर रूप से वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में सत्तामीमांसा विज्ञान, आत्मज्ञान, मनोविज्ञान के सिद्धान्त, मनोभाव विज्ञान, नीतिशास्त्र, व्यावहारिक नैतिकता के नियम एवं धर्मशास्त्र पर व्याख्यान आदि समाहित हैं। योगवासिष्ठ का दर्शन उत्कृष्ट एवं अद्वितीय है।

इस ग्रन्थ में छह प्रकरण हैं- (१) वैराग्य-प्रकरण, (२) मुमुक्षु-प्रकरण, (३) उत्पत्ति-प्रकरण, (४) स्थिति-प्रकरण, (५) उपशान्ति-प्रकरण, और (६) निर्वाण-प्रकरण। योगवासिष्ठ के अनुसार विभिन्न पदार्थों, देश, काल, नियम सहित यह अनुभवगम्य संसार मन की ही उत्पत्ति है अर्थात् एक विचार अथवा कल्पना है। जिसप्रकार स्वप्नावस्था में मन ही पदार्थों की उत्पत्ति करता है, उसी प्रकार जाग्रतावस्था में भी मन द्वारा ही सब-कुछ उत्पन्न होता है। मन का विस्तार ही संकल्प है। संकल्प अपनी भेद-शक्ति के द्वारा इस सृष्टि को उत्पन्न करता है। देश एवं काल केवल मानसिक सृष्टि हैं। पदार्थों के साथ मन के खेल के कारण ही समीपता अत्यन्त दूरी प्रतीत होती है और दूरी समीपता। मन की शक्ति के कारण एक कल्प एक क्षण के समान प्रतीत होता है और क्षण कल्प के समान। जाग्रतावस्था के अनुभव के एक क्षण को स्वप्नावस्था में वर्षों के रूप में अनुभव किया जा सकता है। मन अल्पावधि में ही मीलों का और कई मीलों का एक बालिश्त के रूप में भी अनुभव कर सकता है। मन ब्रह्म से भिन्न और पृथक् नहीं है। ब्रह्म ही स्वयं को मन के रूप में प्रकट करता है। मन सृजनात्मक शक्ति से युक्त है। मन ही बन्धन एवं मोक्ष का कारण है।

योगवासिष्ठ में 'दृष्टि-सृष्टिवाद' का प्रतिपादन किया गया है। कुछ स्थानों पर वसिष्ठ, श्री शंकर के महान् गुरु श्री गौडपादाचार्य के अजातवाद के विषय में बतलाते हैं। आप देखना प्रारम्भ करते हो और सृष्टि की उत्पत्ति हो जाती है। यही दृष्टि-सृष्टिवाद है। तीनों कालों में इस विश्व का अस्तित्व नहीं है। यह सृष्टि का 'अजातवाद' है।

यह अत्यन्त प्रेरणादायी ग्रन्थ है। वेदान्त का प्रत्येक विद्यार्थी इस ग्रन्थ को निरन्तर अध्ययनार्थ अपने पास रखता है। ज्ञानयोग-पथ के साधक के लिए यह ग्रन्थ सतत सहचर है। यह प्रक्रिया ग्रन्थ नहीं है। यह वेदान्त की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित नहीं है। केवल उच्च स्तर के विद्यार्थी ही इस ग्रन्थ का अध्ययन कर सकते हैं। प्रारम्भिक स्तर के विद्यार्थियों को योगवासिष्ठ के अध्ययन से पहले श्री शंकर विरचित आत्मबोध, तत्त्वबोध, आत्मानात्मविवेक तथा पंचीकरण का अध्ययन करना चाहिए।

योगवासिष्ठ के अनुसार, मोक्ष आत्मज्ञान द्वारा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति है। यह जन्म व मृत्यु से मुक्ति है। यह वह निर्मल और अविनाशी ब्रह्म-पद है जहाँ न तो संकल्प हैं और न वासनाएँ। मन यहाँ शान्ति प्राप्त कर लेता है। मोक्ष के अनन्त आनन्द के समक्ष संसार के समस्त सुख मात्र एक बूंद हैं।

यह जो मोक्ष कहा जाता है, वह न तो देवलोक और पाताल में और न ही पृथ्वी पर है। जब समस्त कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं, प्रसरणशील मन का उन्मूलन हो जाता है, वही मोक्ष है। मोक्ष में देश एवं काल नहीं है; न ही कोई आन्तरिक अथवा बाहरी अवस्था है। जब 'मैं' का मिथ्या विचार अथवा अहंकार नष्ट हो जाता है, विचारों (जो कि माया है) के नाश का अनुभव होता है, वही मोक्ष है। समस्त वासनाओं का उन्मूलन ही मोक्ष है। संकल्प ही संसार है; इसका नाश ही मोक्ष है। संकल्प का पूर्ण नाश हो जायेऔर उनके पुनरुत्थान की सम्भावना न हो, यही मोक्ष अथवा निर्मल ब्रा-पर भी की और उनके पबहुत्खनिवृत्ति और परमानन्द-प्राप्ति है। दुःख का अर्थ है- अ चौड़ा। जन्म और मृत्यु ही सर्वाधिक कष्ट का कारण है। जन्म और मृत्यु से मुक्ति होकर प्रकार के कष्टों से मुक्ति है। ब्रह्मज्ञान अथवा आत्मज्ञान ही मोक्ष प्रदान करेगा। पदायों के लिए बासनाओं के अभाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न मन की शान्ति ही मोक्ष है।

मोक्ष प्राप्त करने योग्य कोई पदार्थ नहीं है। यह पूर्वतः यहीं विद्यमान है। आ वास्तव में बद्ध नहीं हो। आप नित्य-शुद्ध और नित्य-मुक्त हो। यदि आप वास्तव में बद्ध होते, तो कभी मुक्त नहीं हो सकते थे। आपको यह जानना है कि आप अपा, सर्वव्यापक आत्म-तत्त्व हो। उसे जानना, वही हो जाना है। यही मोक्ष है। यही जीवस का उद्देश्य है। यह अस्तित्व का परम अर्थ है। मन की अनासक्त अवस्था को ही मोक्ष-पथ जानना चाहिए, जब न तो 'मैं' और न अन्य किसी का अस्तित्व है और जब मन संसार के समस्त सुखों का त्याग कर देता है।

योगवासिष्ठ के अनुसार पूर्ण सच्चिदानन्द परब्रह्म अद्वय, अखण्ड, अनन्त, स्वयंप्रकाशवान्, निर्विकार एवं शाश्वत है। वह अस्तित्व का सागर है, जिसमें हम सभी रहते हैं और गति करते हैं। वह मन व इन्द्रियों की पहुँच से परे है। वह अन्तिम सारतत्व है। अनुभवकर्ता और अनुभव-विषय दोनों के पीछे वही एक तत्त्व है। वह समरूप तत्त्व है। वह सर्वव्यापक है। वह वर्णनातीत है। वह नाम, वर्ण, गन्ध, स्वाद, देश, काल, जन्म और मृत्यु रहित है।

जिसका मन शान्त है, जो मोक्ष के चतुष्टय साधनों से सम्पन्न है, दोषों और अशुद्धियों से मुक्त है, वह मनुष्य ध्यान के द्वारा अन्तर्दृष्टि से आत्म-साक्षात्कार कर सकता है। शास्त्र एवं आध्यात्मिक गुरु हमें ब्रह्म-साक्षात्कार नहीं करा सकते। वे केवल हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं और दृष्टान्तों एवं उदाहरणों के माध्यम से संकेत दे सकते हैं।

शान्ति, सन्तोष, सत्संग और विचार-ये मोक्ष-द्वार के चार प्रहरी हैं। यदि आप इनसे मित्रता करेंगे, तो सरलता से मोक्ष-साम्राज्य में प्रवेश पा लेंगे। यदि आप इनमें से एक का भी संग करेंगे, तो वह अपने अन्य तीन साथियों से आपको अवश्य ही परिचित करवा देगा।

एक साधक को यह अचल आस्था होनी चाहिए कि ब्रह्म ही केवल सत्य है, सब-कुछ ब्रह्म ही है, ब्रह्म ही सभी प्राणियों की आत्मा है। तत्पश्चात् उसे इस सत्य का अपरोक्षानुभव प्राप्त करना चाहिए। ब्रह्म का प्रत्यक्ष ज्ञान ही मुक्ति का साधन है।

जाग्रतावस्था और स्वप्नावस्था के अनुभवों के बीच कोई अन्तर है। जाग्रतावस्था एक दीर्घ-स्वप्न है। ज्यों-ही मनुष्य जाग्रतावस्था में आता है, स्वप्न का अनुभव मिथ्या हो जाता है। उसी प्रकार एक आत्म-साक्षात्कार प्राप्त सन्त के लिए जाग्रतावस्था मिथ्या हो जाती है। स्वप्नावस्था वाले मनुष्य के लिए जाग्रतावस्था मिथ्या हो जाती है।

एक जीवन्मुक्त आनन्दपूर्वक विचरण करता है। उसमें न तो आकर्षण हैं न ही आसक्तियाँ हैं। उसके लिए न तो कुछ प्राप्तव्य है और न ही त्याज्य। वह विश्व-कल्याण के लिए कार्य करता है। वह कामनाओं, अहंकार और लोभ से मुक्त है। नगर के व्यस्ततम भाग में कार्य करता हुआ भी वह एकान्त में ही है।

आप सभी योगवासिष्ठामृत का पान करें! आप सभी आत्मज्ञान-रूपी मधु का आस्वादन करें! आप सभी इसी जन्म में जीवन्मुक्त बन जायें! आपको सन्त वसिष्ठ, सन्त वाल्मीकि एवं अन्य ब्रह्मविद्या-गुरुओं का आशीर्वाद प्राप्त हो! आप सभी ब्रह्मानन्द-रस का आनन्द प्राप्त करें!

हस्तामलक स्तोत्र

स्तोत्र की भूमिका

दक्षिण भारत के श्रीवली नामक ग्राम में प्रभाकर नाम के ब्राह्मण के यहाँ पुत्र रूप में हस्तामलक का जन्म हुआ। किशोरावस्था से ही वह सांसारिक विषयों के प्रति अत्यन्त उदासीन था। उसका व्यवहार एक मूक व बधिर के समान था। एक बार, जब श्री शंकर अपने अनुयायियों सहित उस स्थान पर आये, प्रभाकर अपने पुत्र को उनके पास ले कर गया और उनके चरणों में प्रणाम किया। श्री शंकर ने पिता-पुत्र दोनों को उठाया और प्रभाकर से पूछा।

प्रभाकर ने कहा- "हे पूज्य महात्मन् ! यह मेरा पुत्र मूक है और किशोरावस्था से ही सभी विषयों के प्रति उदासीन है। अभी यह तेरह वर्ष का है। यह न तो हमारे वार्तालाप को समझता है और न ही उसमें रुचि लेता है। इसने न तो किसी शास्त्र का और न ही वेदों का अध्ययन किया है जो कि एक ब्राह्मण द्वारा अवश्य पठनीय है। यह तो वर्णमाला भी नहीं जानता है। मैंने बहुत ही कठिनाई से इसका यज्ञोपवीत संस्कार किया है। यह अपने मित्रों के

साथ कभी खेलने नहीं जाता है। इसकी उदासीन प्रकृति को देख कर, कभी-कभी इसके मित्र इसे मारते हैं, परन्तु यह कभी क्रोधित नहीं होता। यह कभी भोजन लेता है और कभी नहीं। परन्तु यह हमेशा प्रसन्न एवं आनन्दित रहता है। इसकी इस जड़ता का क्या कारण है? कृपया मेरे बालक की रक्षा कीजिए।"

प्रत्युत्तर में, श्री शंकर ने उस बालक से निम्नांकित प्रश्न पूछे। बालक के द्वारा दिये गये उत्तरों को स्तोत्र रूप में संकलित कर इसे 'हस्तामलक स्तोत्र' नाम दिया गया। वास्तव में, वह न तो मूक था और न ही बधिर, अपितु वह एक पूर्ण ज्ञानी था- जीवन्मुक्त था।

कस्त्वं शिशो कस्य कुतोऽसि गन्ता
किं नाम ते त्वं कुत आगतोऽसि ।
एतन्मयोक्तं वद चार्भक त्वं
मत्प्रीतये प्रीतिविवर्धनोऽसि ।।१ ।।

श्री शंकर ने बालक से पूछा -

हे प्रिय बालक! तुम कौन हो? किसके पुत्र हो? कहाँ जाओगे? तुम्हारा नाम क्या है? कहाँ से आये हो? मेरी प्रसन्नता के लिए मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दो। तुम मुझे अत्यन्तप्रिय हो।

नाऽहं मनुष्यो न च देवयक्षो
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थो
न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः ।
भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः ॥२॥

हस्तामलक ने उत्तर दिया-

मैं मनुष्य नहीं हूँ, देव और यक्ष भी नहीं हूँ; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र भी नहीं हूँ। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासी भी नहीं हूँ। मैं स्वयं शाश्वत ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ।

निमित्तं मनश्चक्षुरादिप्रवृत्तौ
निरस्ताखिलोपाधिराकाशकल्पः ।
रविर्लोकचेष्टानिमित्तं यथा यः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ।।३।।

मैं शाश्वत ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। आकाशादि सीमित उपाधियों से मुक्त हूँ, मन एवं चक्षुरादि इन्द्रियों की प्रवृत्ति का कारण हूँ, जिस प्रकार सूर्य सब लोकों की प्रवृत्ति का कारण है।

यमग्न्युष्णवन्नित्यबोधस्वरूपं
मनश्चक्षुरादीन्यबोधात्मकानि ।
प्रवर्तन्त आश्रित्य निष्कम्पमेकं
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ।।४।।

जिस प्रकार अग्नि की उष्णता है, उसी प्रकार उस अपरिवर्तनीय शाश्वत ज्ञानस्वरूप आत्मा की प्रकृति शुद्ध चैतन्य और उसी का आश्रय ले कर जड़ मन एवंचक्षुरादि इन्द्रियाँ अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, मैं वही नित्य ज्ञानस्वरूपआत्मा हूँ।

मुखाभासको दर्पणे दृश्यमानो
मुखत्वात्पृथक्त्वेन नैवास्तु वस्तु।
चिदाभासको धीषु जीवोऽपि तद्वत्
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ।।५।।

जिस प्रकार दर्पण में दिखता हुआ मुख का प्रतिबिम्ब वस्तुतः बिम्ब-रूप मुख से पृथक् नहीं है, उसी प्रकार बुद्धि-रूपी दर्पण में जीव-रूप से प्रतीयमान चैतन्य का प्रतिबिम्ब, बिम्ब-रूप चैतन्य से पृथक् नहीं है, चैतन्य-रूप ही है, वही नित्यज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

यथा दर्पणाभाव आभासहानौ
मुखं विद्यते कल्पनाहीनमेकम् ।
तथा धीवियोगे निराभासको यः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ।।६।।

जिस प्रकार दर्पण-रूपी उपाधि के न रहने पर उसमें पड़ा हुआ मुख का प्रतिबिम्ब नहीं रहता है; परन्तु मुख तो परिशिष्ट रहता ही है, उसी प्रकार बुद्धि-रूपी उपाधि के न रहने पर भी नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा ही रहता है, वही मैं हूँ।

मनश्चक्षुरादेर्वियुक्तः स्वयं यो
मनश्चक्षुरादेर्मनश्चक्षुरादिः ।
मनश्चक्षुरादेरगम्यस्वरूपः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ।। ७ ।।

जो आत्मा मन एवं चक्षुरादि इन्द्रियों से परे है, जो मन का मन, चक्षु का चक्षु है और जो इन मन, इन्द्रियादि के द्वारा नहीं जाना जा सकता है, मैं वही नित्य ज्ञान स्वरूप आत्मा हूँ।

य एको विभाति स्वतः शुद्धचेताः
प्रकाशस्वरूपोऽपि नानेव धीषु ।
शरावोदकस्थो यथा भानुरेकः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ।।८ ।।

जिस प्रकार जल से भरे अनेक पात्रों में एक ही सूर्य अनेक रूपों से भासता है, उसी प्रकार मैं एक ही, स्वयंज्योति आत्मा, अनेक बुद्धियों को प्रकाशित करने वाला नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ।

यथाऽनेकचक्षुःप्रकाशो रविर्न
क्रमेण प्रकाशीकरोति प्रकाश्यम् ।
अनेका धियो यस्तथैकप्रबोधः ।।

स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥९ ।।

जिस प्रकार सूर्य अनेक नेत्रों को क्रम से प्रकाशित न करता हुआ एक साथ ही प्रकाश करता है, उसी प्रकार समस्त बुद्धियों को एक ही साथ प्रकाशित करने वाला नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

विवस्वत्प्रभातं यथारूपमक्ष
प्रगृह्णाति नाभातमेवं विवस्वान् ।
यदाभात आभासयत्यक्षमेकः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥१० ॥

मैं वही नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ जिसके प्रकाश से ही नेत्र अन्य पदार्थों को देखने की क्षमता पाते हैं, जिस प्रकार सूर्योदय होने पर ही हम पदार्थों को देख सकते हैं अन्यथा नहीं।

यथा सूर्य एकोऽप्स्वनेकश्चलासु
स्थिरास्वप्यनन्यद्विभाव्यस्वरूपः ।
चलासु प्रभिन्नः सुधीष्वेक एव
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ॥११ ।।

जैसे चंचल एवं स्थिर जल में एक ही सूर्य अनेक रूप से भिन्न दिखायी देता है, तथापि वह भिन्न नहीं हो सकता। उसी प्रकार चंचल एव स्थिर विभिन्न बुद्धियों कोप्रकाशित करने वाला आत्मा एक ही है, ऐसा अद्वैत स्वरूप, नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा मैं हूँ।

घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्क
यथा निष्प्रभं मन्यते चातिमूढः।
तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ।।१२।।

जैसे मूर्ख मनुष्य मेघ से आच्छादित सूर्य को प्रभा हीन एवं दीप्ति रहित मानता है, उसी प्रकार मूढ़ बुद्धि मानव को जो नित्य-मुक्त आत्मा बद्ध प्रतीत होता है, मैं वही शाश्वत ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ।

समस्तेषु वस्तुष्वनुस्यूतमेकं
समस्तानि वस्तूनि यं न स्पृशन्ति ।
वियद्वत्सदा शुद्धमच्छस्वरूपः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा ।।१३ ।।

मैं वही नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ जो आकाश के समान सर्वदा शुद्ध और निर्मल है, समस्त पदार्थों में व्याप्त है, पदार्थ उसका स्पर्श नहीं कर सकते और न ही अपने संसर्ग से उसे मलिन कर सकते हैं।

उपाधौ यथा भेदता सन्मणीनां
तथा भेदता बुद्धिभेदेषु तेऽपि ।
यथा चन्द्रिकाणां जले चंचलत्वं
तथा चंचलत्वं तवापीह विष्णो ॥१४।।

जिस प्रकार वर्ण एवं आकृति की भिन्नता के कारण मणियों में भेद का ज्ञान होता है, उसी प्रकार उपाधियों की विभिन्नता के कारण आत्मा अनेक रूप हुआ प्रतीत होता है। जिस प्रकार चंचल जल के सम्बन्ध से स्थिर चन्द्रमा चंचल और अनेक रूप प्रतीत होता है, उसी प्रकार हे विष्णो! आप अनेक रूप प्रतीत होते हो (विभिन्न उपाधियों के कारण) (यथार्थतः आप एक, नित्य-शुद्ध और निर्विकार हो।)।

परा-पूजा

अखण्डे सच्चिदानन्दे निर्विकल्पैकरूपिणि ।
स्थितेऽद्वितीयभावेस्मिन् कथं पूजा विधीयते ।।१।।

जो अखण्ड, सच्चिदानन्द, निर्विकल्प और अद्वैत है, उसकी पूजा कैसे की जाए?

पूर्णस्याऽऽवाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चाऽऽसनम् ।
स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याऽऽचमनं कुतः ॥२॥

उस परिपूर्ण परमात्मा का आवाहन कहाँ हो? जो सभी का आधार है, उस सर्वाधार को कौन-सा आसन दिया जाये ? जो सर्वदा शुद्ध-पवित्र है, उसे अर्घ्य, पाद्य और आचमन से क्या प्रयोजन?

निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च।
अगोत्रस्य त्ववर्णस्य कुतस्तस्योपवीतकम् ।।३।।

जो सर्वदा निर्मल है, उसके लिए स्नान अनावश्यक है; जिसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आच्छादित कर रखा है, उसे वस्त्र से क्या प्रयोजन? जो गोत्र एवं वंश से रहित है, उसे यज्ञोपवीत की क्या आवश्यकता है?

निर्लेपस्य कुतो गन्धः पुष्पं निर्वासनस्य च ।
निर्विशेषस्य का भूषा कोऽलंकारो निराकृतेः ॥४॥

जो निर्लेप है, सदा आनन्दित है और सर्व-अभिलाषाओं से रहित है, उसको गन्ध एवं पुष्प सेवन से क्या लाभ ? निराकार को वेशभूषा कैसे धारण करवायें? निर्गुण-निराकार को अलंकार से क्या प्रयोजन?

निरंजनस्य किं धूपैर्दीपैर्वा सर्वसाक्षिणः ।
निजानन्दैकतृप्तस्य नैवेद्यं किं भवेदिह ॥५॥

जो निरंजन है, उसे धूप से क्या प्रयोजन? जो स्वयं सभी ज्योतियों की ज्योति है, उसे किस प्रकार दीप-ज्योति अर्पण की जाये ? जो नित्य आत्म-तृप्त एवं निजानन्द में मग्न है, उसे क्या नैवेद्य अर्पित किया जा सकता है?

विश्वानन्दयितुस्तस्य किं ताम्बूलं प्रकल्प्यते ।
स्वयंप्रकाशश्चिद्रूपो योऽसावर्कादिभासकः ।।६ ॥

जो सभी प्राणियों को आनन्द देने वाला है, जो आत्म-दीप्त एवं चैतन्य स्वरूप है और सूर्यादि समस्त ज्योतियों का भासक है, उसको ताम्बूल (पान) कैसे अर्पित किया जाये?

प्रदक्षिणा ह्यानन्तस्य ह्यद्वयस्य कुतो नतिः ।
वेदवाक्यैरवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते ।।७।।

अनन्त की प्रदक्षिणा कैसे हो सकती है? उस एक और अद्वय को नमस्कार कैसे हो? चतुर्वेद जिसके वर्णन में स्वयं को असमर्थ पाते हैं, उसकी स्तुति कैसे हो?

स्वयं प्रकाशमानस्य कुतो नीराजनं विभोः ।
अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्वासनं भवेत् ।।८।।

स्वयंप्रकाश-तत्त्व का नीराजन (दीपक, कर्पूर से आरती) कैसे हो? जो पूर्ण है, सर्वव्यापक है, उसका उद्वासन (विसर्जन) किस प्रकार हो?

एवमेव परा पूजा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
एकबुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमैः ।।९।।

सभी ब्रह्मान्वेषी साधकों द्वारा भक्तियुक्त एवं एकाग्र चित्त से यह परा-पूजा सब अवस्थाओं में सदैव की जानी चाहिए।

विशेष- आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्यादि देवोपासना की विभिन्न क्रियाएँ हैं, जो कर्मकाण्डीय उपासना के

नियमानुसार सम्पन्न की जाती हैं। इस स्तोत्र का उद्देश्य यह निर्देशित करना है कि ये सब क्रियाएँ एक अद्वितीय ब्रह्म के प्रति सम्भव नहीं हैं। सभी ब्रह्मान्वेषी साधकों द्वारा इसी स्तोत्र के प्रकाश में उस परम तत्त्व के स्वरूप को समझा जाना चाहिए।

योगवासिष्ठ-सार

यदि मोक्ष-द्वार के चार प्रहरियों-शान्ति, विचार, सन्तोष और सत्संग से मित्रता कर ली जाये, तो अन्तिम निर्वाण प्राप्ति में कोई बाधा नहीं आ सकती। यदि इनमें से एक से भी मित्रता हो जाये, तो वह अपने शेष साथियों से स्वयं ही मिला देगा।

यदि तुम्हें आत्मा का ज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान हो जाता है, तो तुम जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाओगे। तुम्हारे सब संशय दूर हो जायेंगे और सारे कर्म नष्ट हो जायेंगे। केवल अपने ही प्रयत्नों से अमर, सर्वानन्दमय ब्रह्म-पद प्राप्त किया जा सकता है।

आत्मा को नष्ट करने वाला केवल मन है। मन का स्वरूप मात्र संकल्प है। मन की यथार्थ प्रकृति वासनाओं में निहित है। मन की क्रियाएँ ही वस्तुतः कर्म नाम से विहित होती हैं। सृष्टि ब्रह्म-शक्ति के माध्यम से मन की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मन शरीर का चिन्तन करता हुआ शरीर-रूप ही बन जाता है, फिर उसमें लिप्त हुआ उसके द्वारा कष्ट पाता है।

मन ही सुख अथवा दुःख की आकृति में बाहरी संसार के रूप में प्रकट होता है। कर्तृत्व-भाव में मन चेतना है। कर्म-रूप में यह सृष्टि है। अपने शत्रु विवेक के द्वारा मन ब्रह्म की निश्चल व शान्त स्थिति प्राप्त कर लेता है। यथार्थ आनन्द वह है, जो शाश्वत ज्ञान के द्वारा मन के वासना रहित हो कर अपना सूक्ष्म रूप खो देने पर उदय होता है। संकल्प और वासनाएँ जो तुम उत्पन्न करते हो, वे तुम्हें जंजाल में फँसा लेती हैं। परब्रह्म का आत्म-प्रकाश ही मन अथवा इस सृष्टि के रूप में प्रकट हो रहा है।

आत्म-विचार से रहित मनुष्यों को यह संसार सत्य प्रतीत होता है, जो संकल्पों की प्रकृति के सिवाय कुछ नहीं है। इस मन का विस्तार ही संकल्प है। अपनी भेद-शक्ति के द्वारा संकल्प इस सृष्टि को उत्पन्न करता है। संकल्पों का नाश ही मोक्ष है।

आत्मा का शत्रु यही अशुद्ध मन है, जो अत्यधिक भ्रम और सांसारिक विचारों के समूह से भरा रहता है। इस विरोधी मन पर नियन्त्रण करने के अतिरिक्त पुनर्जन्म-रूपी महासागर से पार ले जाने वाला पृथ्वी पर कोई जहाज (बेड़ा) नहीं है।

पुनर्जन्मों के कोमल तनों सहित, इस दुःखदायी अहंकार के मूल अंकुर 'तेरा-मेरा' की लम्बी शाखाओं सहित सर्वत्र फैल जाते हैं और मृत्यु, रोग, वृद्धावस्था एवं क्लेश-रूपी अपक्व फल देते हैं। ज्ञानाग्नि से यह वृक्ष समूल नष्ट किया जा सकता है।

इन्द्रियों के माध्यम से दिखायी देने वाले समस्त विभिन्न प्रकार के दृश्य पदार्थ मिथ्या हैं; जो सत्य है, वह परब्रह्म अथवा परम आत्मा है।

यदि मोहित करने वाले सारे पदार्थ आँख की किरकिरी (पीड़ाकारक) बन जायें और पूर्व-भावना के विपरीत प्रतीत होने लगें, तो मनोनाश हो जाये। तुम्हारी सारी सम्पत्ति व्यर्थ है। सारी धन-दौलत तुम्हें खतरे में डालने वाली है। वासनाओं से मुक्ति तुम्हें शाश्वत, आनन्दपूर्ण धाम पर ले जायेगी।

वासनाओं और संकल्पों को नष्ट करो। अहंकार को मार डालो। इस मन का नाश कर दो। अपने-आपको 'साधन-चतुष्टय' से सम्पन्न करो। शुद्ध, अमर, सर्वव्यापक आत्मा का ध्यान करो। आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके अमरता, अनन्त शान्ति, शाश्वत सुख, स्वतन्त्रता और पूर्णता प्राप्त करो।

विषय-सूची

प्रकाशकीय 4
परिचय 5
हस्तामलक स्तोत्र 8
  स्तोत्र की भूमिका 8
परा-पूजा 12
योगवासिष्ठ-सार 14
भूमिका 17
१.वैराग्य-प्रकरण 18
  विरक्ति 18
  शुकदेव की कथा 23
२.मुमुक्षु-प्रकरण 25
  मुमुक्षुत्व 25
३.उत्पत्ति-प्रकरण 29
  सृष्टि 29
  कर्कटी की कथा 30
  इन्द्र और अहल्या की कथा 34
  बालक के लिए एक कथा 36
  एक सिद्ध की कथा 37
४.स्थिति-प्रकरण 40
  स्थिति 40
  शुक्र की कथा 41
  भीम, भास और दृढ़ की कथा 45
५.उपशान्ति-प्रकरण 47
  लय 47
राजा जनक की कथा 48
गाधि की कथा 52
  उद्दालक की कथा 56
  भास और विलास की कथा 59
  वीतहव्य की कथा 64

६.निर्वाण-प्रकरण 67
मुक्ति 67
बिल्वफल की कथा 68
शिखिध्वज की कथा 68
इक्ष्वाकु की कथा 81
परिशिष्ट १ 86
श्री सत्यनारायण व्रत 86
तृतीय भाग 90
परिशिष्ट २ 96
परम सत्य का साक्षात्कार 96

भूमिका

हरि ॐ! उस सच्चिदानन्द परब्रह्म को प्रणाम है, जिससे सभी प्राणियों की उत्पत्ति हुई है, जिसके द्वारा सभी प्रकट हैं, जिस पर सभी निर्भर हैं और सृष्टि के प्रलय के समय जिसमें सभी समा जाते हैं।

योगवासिष्ठ को पढ़ने के अधिकारी न तो अज्ञानी हैं जो संसार-रूपी दलदल में पूर्णतया डूबे हुए हैं और न ही जीवन्मुक्त अथवा मुक्त सन्त हैं जिन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है, केवल वही इसके अध्ययन के अधिकारी हैं जो यह अनुभव करते हैं कि वे बन्धन में हैं और जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्ति की इच्छा करते हैं।

ऋषि भारद्वाज ने कहा- "हे श्रद्धेय गुरुदेव! मुझे पहले राम के विषय में बताइए और तत्पश्चात् यह बताइए कि मैं किस प्रकार मोक्ष प्राप्त कर सकता हूँ।" सन्त वाल्मीकि ने उत्तर दिया...

१.वैराग्य-प्रकरण

विरक्ति

हे भारद्वाज! मुनि वसिष्ठ द्वारा राम को निर्दिष्ट मार्ग का चिन्तन करके जन्म-मरण से मुक्त हो जाओ; राम ने अपने गुरु के अमूल्य उपदेशों का अनुपालन करके ही आत्मज्ञान प्राप्त किया था।

राम सभी पवित्र तीर्थस्थानों के दर्शन करना चाहते थे। उन्होंने अपने गुरु एवं पिताश्री की आज्ञा प्राप्त की और तीर्थयात्रा हेतु प्रस्थान किया। सारे पवित्र स्थानों का दर्शन करके वह अयोध्या वापस लौटे। उस समय राम पन्द्रह वर्ष के थे। उनकी देह शनैः-शनैः दुर्बल पड़ने लगी। उनका दमकता चेहरा पीला पड़ गया। वह पद्मासन लगा कर निष्कम्प बैठ जाते और चिन्तन में लीन रहते थे। वह अपने नित्य-कर्तव्य भी करना भूल जाते थे। राजा दशरथ ने राम से पूछा कि वह उन्हें अपने दुःख और अन्यमनस्कता का कारण बतायें; परन्तु राम ने कोई उत्तर नहीं दिया।

उसी समय मुनि विश्वामित्र ने राजा के दरबार में प्रवेश किया।

दशरथ ने मुनि को सम्मानपूर्वक अभिवादन करके पूछा- "हे अभिनन्दनीय मुनिवर! कृपया आप मुझे अपने आने का उद्देश्य बतायें। आप मुझसे जो चाहते हैं, मैं ऐसे किसी भी पदार्थ को अपने से विलग कर सकता हूँ अर्थात् आपको प्रदान कर सकता हूँ।"

इस पर विश्वामित्र जी बोले- "मैं एक महान् यज्ञ सम्पन्न कर रहा हूँ। राक्षस मुझे बहुत परेशान करते हैं। कृपया अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को मेरे साथ जाने की अनुमति दें। वह इन सब भयंकर राक्षसों को नष्ट कर देगा।"

दशरथ ने उत्तर दिया-"राम बहुत छोटा है। वह राक्षसों से युद्ध नहीं कर सकेगा। इसके अतिरिक्त, मैं क्षण-भर के लिए भी उसका वियोग सहन नहीं कर सकता। मैं वृद्ध हूँ।"

विश्वामित्र ने क्रुद्ध हो कर कहा- "तुमने मुझे किसी भी वस्तु से वियुक्त होने का निश्चय वचन दिया था। अब तुम अपना वचन पूरा नहीं करना चाहते हो। तुम सज्जन नृप नहीं हो।" तब वसिष्ठ जी ने मध्यस्थता की और दशरथ से कहा- "हे राजन्! तुम्हें अपना वचन पूरा करना चाहिए। मुनि विश्वामित्र राम की रक्षा करेंगे।"

राजा दशरथ ने राम के अनुचरों की ओर अभिमुख हो कर निर्देश दिया- "शीघ्र ही राम को यहाँ बुला कर लाओ।"

अनुचरों ने उत्तर दिया- "जब से वे तीर्थयात्रा से लौटे हैं, वे अपनी दैनिक क्रियाएँ ही नहीं कर रहे हैं। स्नान, भोजन और अच्छे वस्त्रों के प्रति उनका उपेक्षा भाव है। वे कहते हैं कि उनका जीवन व्यर्थ जा रहा है और यह संसार मिथ्या है। वे एक संन्यासी का सा जीवन-यापन कर रहे हैं। संसार के पदार्थों में उन्हें कोई आकर्षण प्रतीत नहीं होता। वे उस जीवन्मुक्त अवस्था को प्राप्त करने के इच्छुक प्रतीत होते हैं- जहाँ कोई दुःख और चिन्ताएँ नहीं हैं।"

वसिष्ठ जी ने सेवकों से कहा कि वे राम को राजदरबार में लायें। फिर उन्होंने इस प्रकार राजसभा को सम्बोधित किया- "राम में वैराग्य विकसित हो गया है। वह शीघ्र ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेंगे और फिर वह सारे कार्य आनन्दपूर्वक करेंगे।"

तब राम ने राजदरबार में आ कर अपने गुरु वसिष्ठ जी, मुनि विश्वामित्र जी और अपने पिता को प्रणाम किया।

विश्वामित्र जी ने राम से कहा- "मुझे अपने मन की स्थिति बताओ, तुम्हारे दुःख का कारण क्या है?"

राम ने उत्तर दिया- "हे पूज्य मुनि विश्वानित्र जी! मैं ऐसा ही करूँगा। कृपया सुनिए :

संसार

"यह संसार मिथ्या है। इस संसार में लेशमात्र भी सुख नहीं है। मनुष्य मरने के लिए उत्पन्न होते हैं और फिर जन्म लेने हेतु मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अतएव, इस संसार में सब-कुछ मिथ्या है। मैंने विवेक विकसित कर लिया है, इसलिए मैंने ऐन्द्रिक सुखों के समस्त विचार बिलकुल त्याग दिये हैं। मनुष्य को मन की छलपूर्ण प्रकृति का ज्ञान होना चाहिए। मन ही संसार के अस्तित्व को सत्य के रूप में चित्रित करता है। केवल आत्मा ही सत्य है। मैं इस मिथ्या संसार से ऊब गया हूँ। मैं इस विकट संसार के कष्टों और दुःखों से मुक्त होने का उपाय खोजने की चेष्टा कर रहा हूँ। यह विचार मुझे दावानल की भाँति दग्ध कर रहा है।

धन-सम्पत्ति

"धन-सम्पत्ति सुख नहीं दे सकती। यह विपत्ति का स्रोत है। यह अनित्य होती है। यह कभी स्थिर नहीं रहती। यह हमेशा एक से दूसरे के पास जाती रहती है। यह बुराई को जन्म देती है। यह लोगों को भ्रामक मृगमरीचिका की भाँति प्रलोभन देती है। यह मनुष्य के हृदय को कठोर बना देती है। यह दूषित साधनों से प्राप्त की जाती है। यह मनुष्य में अभिमान उत्पन्न करके ईश्वर को विस्मृत करा देती है।

जीवन

"जीवन क्षणिक है। यह पानी के बुलबुले के समान है। यह विपत्तियों, दुःखों और आघातों से पूर्ण होता है; फिर भी मूर्ख, अज्ञानी मनुष्य इस सांसारिक जीवन से चिपका रहता है। यह शरीर एक भारी बोझ है। इस संसार में जीवन श्रम और दुःखों से व्याप्त है। मृत्यु निरन्तर हमारी ओर ताकती रहती है। अनेक प्रकार के रोग इस शरीर में उपद्रव मचाते रहते हैं। युवावस्था शीघ्रता से हमें छोड़ देती है और दुर्बलता तथा शरीर-विनाश के साथ वृद्धावस्था हमें आ घेरती है। सतत आत्म-विचार का अभ्यास करने वाला ही सात्त्विक जीवन-यापन करता है। जो आत्मज्ञान लाभ करके पुनर्जन्मों से मुक्त हो गया है, वही यथार्थ में सत्य एवं श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करता है। अन्य जनों के जीवन तो वृद्ध गर्दभों के जीवन जैसे हैं। इस प्रकार इस जीवन के समान निरर्थक कुछ भी नहीं है, जो सब प्रकार के गुणों से रहित है और मृत्यु, रोग एवं विपत्तियों का स्थान है।

अहंकार

"मैं इस विनाशक अहंकार से अत्यन्त भयभीत हूँ जो क्रियाओं, वासनाओं एवं कष्टों का जनक और समस्त बुराइयों का स्रोत है। यह भ्रामक है। यह लोगों को भ्रमित करता है। यद्यपि यह कुछ नहीं है, किन्तु सांसारिक जनों के लिए सब-कुछ है। 'मेरे' पन से इसका संसर्ग है। यह अविद्या से उत्पन्न है। यह दम्भ से उद्भूत है। अभिमान इसका पोषण करता है। यह सबसे बड़ा शत्रु है। यदि कोई इस अहंकार का त्याग कर दे, तो वह सुखी हो जायेगा। त्याग का रहस्य अहं के त्याग में है।

"अहंकार का स्थान मन में है। इसी प्रभाव में आ कर मनुष्य बुराई और दृष्कृत्य करता है। यह गहरी जड़ पकड़े हुए है। चिन्ताएँ और परेशानियाँ अहं-भाव से ही उत्पन्न होती हैं। अहंकार एक वास्तविक रोग है। अभिमान, क्रोध, मोह, काम, लोभ, लालच, ईर्ष्या और राग-द्वेष-ये सभी अहंकार के ही अनुचर हैं। अहंकार हमारे गुणो को और चित्त की शान्ति को नष्ट करता है। यह हमें फँसाने के लिए प्रेम का जाल बिछाता है। जो अहंकार से मुक्त है,

वह सदा सुखी और शान्त रहता है। अहंकार के कारण वासनाएँ बढ़ती और फैलती जाती हैं। इस चिरकालिक शत्रु ने स्त्री-बच्चों और मित्रों के प्रलोभन हमारे चतुर्दिक् फैलाये हुए हैं, जिनके जादू को तोड़ना बहुत कठिन है। अहंकार से बड़ा कोई शत्रु नहीं है। हे परम ज्ञानी मुनि! मुझ पर अनुकम्पा करो, जिससे मैं इस विनाशक अहंकार से अपने को मुक्त कर सकूँ।

मन

"यह भयानक मन केवल अहंकार से उत्पन्न होता है। यह चंचल मन सड़क के कुत्ते की भाँति एक पदार्थ से दूसरे की ओर दौड़ता रहता है। यह सदैव बेचैन रहता है। यह इन्द्रिय-भोगों की ओर प्रवृत्त रहता है। यह अस्थिर प्रकृति का है। यह दुष्कामनाओं में सदा फँसा रहता है। समुद्र के जल-प्रवाह को पी जाना, मेरुपर्वत को उखाड़ फेंकना अथवा जलती हुई अग्नि को निगल जाना सम्भव है; परन्तु इस भयंकर मन पर नियन्त्रण करना असम्भव है। यह विश्व केवल इस मन के कारण प्रकट होता है। सारे कष्ट इस मन से उत्पन्न होते हैं। यदि विवेक और आत्मा की खोज के द्वारा इस मन का नाश कर दिया जाये, तो इस विश्व सहित सारे कष्टों का लोप हो जायेगा।

कामना

"कामना शान्ति की शत्रु है। यह एक उल्लू के समान है जो हमारे मोह-रूपी अन्धकार और लोभ-रूपी रात्रि में हमारे मनों के आस-पास मँडराती रहती है। यह हमारे समस्त सद्गुणों को नष्ट कर देती है। जिस प्रकार चिड़िया जाल में फँस जाती है, उसी प्रकार हम इच्छाओं के जाल में फँसे रहते हैं। कामनाओं की अग्नि ने हमें भस्म कर दिया है। अमृत में स्नान करना भी हमें शीतल नहीं कर सकता। कामना ही पुनर्जन्मों का और सब प्रकार के कष्टों, विपत्तियों तथा दुःखों का कारण है। यह एक नुकीली तलवार है। यह मनुष्यों के हृदयों tilde 7 चुभ कर अकारण ही उन्हें दुःख देती है।

शरीर

"यह शरीर मांस, चर्बी, हड्डी, नसों, तन्तुओं और रक्त से बना है। यह रोगों का घर है। यह विकारों से परिपूर्ण है। इसमें सड़ने की प्रवृत्ति है। इस शरीर में अहंकार स्वामी बन कर वास करता है और लोभ स्वामिनी। इसके दस उपद्रवी गायें (इन्द्रियाँ) हैं। मन इसका सेवक है। यह शरीर बुलबुले की भाँति है, जो क्षण-भर में विलीन हो जायेगा। यह एक हवा-भरे हुए गुब्बारे की भाँति है, जो कभी भी फट जायेगा। यह एक गन्दगी से भरे बर्तन की भाँति है, जो किसी भी क्षण टूट जायेगा। चमकीली चर्म वृद्धावस्था में मुरझाने वाली है, सिकुड़ने वाली है। उन मनुष्यों को धिक्कार है, जो इस शरीर को अमर आत्मा समझ कर अपने सुख और शान्ति को इस पर निर्भर मानते हैं। जिन्हें बादलों में चमकने वाली बिजली के स्थायित्व और गन्धर्व नगर में विश्वास है, वे ही इस शरीर को सत्य मान कर इसमें आसक्त होंगे।

बाल्यावस्था

"बालक असहाय स्थिति में होता है। वह अपने विचार प्रकट नहीं कर सकता। वह गूँगा है। वह मिट्टी और कूड़ा खा लेता है। बिना कारण रोने लगता है। वह अज्ञानी है। इस अवस्था में अग्नि, पानी आदि से सर्वदा खतरा हो सकता है। वह बड़ा क्षोभशील है। इस निरर्थक बाल्यावस्था को जीवन की सुखमयी स्थिति कैसे कहा जा सकता है?

युवावस्था

"जीवन की इस अवधि में युवक कामुकता का दास होता है। उसका मन दुर्विचारों से भरा रहता है। वह विभिन्न प्रकार के दुष्कृत्य करता है। उसके सद्‌गुणों का लोप हो जाता है। उसकी मुखाकृति वासनाओं से विकृत हो जाती है। युवावस्था का काल तीव्र गति से समाप्त हो जाता है। युवावस्था का आकर्षण बिजली की चमक की भाँति त्वरित फीका पड़ जाता है। वह मूर्ख व्यक्ति, जो अज्ञानतावश अपने क्षणिक यौवन पर आनन्दित होता है, पशु-मानव अर्थात् मनुष्य-रूप में पशु ही है। वह अल्प काल में ही अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करता है। ऐसा युवक मिलना दुर्लभ है जो विनम्र हो, जो सन्तों के संसर्ग और सेवा में समय बिताता हो, जो सहानुभूतिपूर्ण एवं दयालु हो और जो सद्‌गुणों से विभूषित हो। यद्यपि वह धर्मग्रन्थों के अध्ययन में निपुण हो, तब भी वह वासना का दास हो जाता है। जिसने युवावस्था के समस्त अवरोधों पर विजय पा कर आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया हो, वह युवा होते हुए भी सबके द्वारा सम्मान का पात्र है। वह यथार्थ में बुद्धिमान् है।

कामुकता

"जिसका शरीर मांस, हड्डी, चर्बी, नसों और रक्त से बना है, उस स्त्री में क्या सौन्दर्य है? स्त्री में सौन्दर्य अल्पकालीन होता है। वह भ्रान्ति का कारण है। सिकुड़नों से पूर्ण चर्म वाली वृद्धा में सौन्दर्य कहाँ है ? स्त्रियाँ दुर्गुणों की लपटें हैं। वे पुरुषों को उसी प्रकार भस्म कर देती हैं, जिस प्रकार अग्नि तिनके को। वे उन्हें दूर से जला देती हैं; इसीलिए वे अग्नि से भी अधिक भयंकर हैं। किस प्रकार उनकी मधुर क्रीड़ाएँ पौरा शक्ति का नाश करती हैं और किस प्रकार उनके आलिंगन - चुम्बन पुरुषों की सुबुद्धि को पराजित कर देते हैं! सुन्दर स्त्री एक विषपूर्ण नशीले पदार्थ के समान है जो आकर्षक नशा उत्पन्न कर और विवेक-शक्ति को आवृत करके जीवन को नष्ट कर देता है। एक अज्ञानी, कामुक पुरुष स्त्री के प्रलोभन में फँस कर विकृत वासना-रूपी धागे से घसीट लिया जाता है। यह रहस्यमय संसार स्त्री से ही प्रारम्भ हुआ है और अपनी अवस्थिति के लिए उसी पर निर्भर है। वह हमारे अनन्त दुःखों की श्रृंखला का कारण है। मुझे उसके वक्षःस्थल, नेत्रों, नितम्बों और भौहों से क्या प्रयोजन-जिनका सार-तत्त्व मांस ही है और जो पूर्णतया असार हैं। यदि स्त्री का आकर्षण समाप्त हो जाये, तो सभी सांसारिक बन्धनों का अन्त हो जायेगा। उसका त्याग किये बिना, मैं शाश्वत ब्रह्मानन्द की प्राप्ति की आशा किस प्रकार कर सकता हूँ? काले नेत्रों वाली स्त्रियाँ, अज्ञानी कामुक पुरुषों को फँसाने के लिए कामदेव द्वारा बिछाये हुए जाल हैं। उन सुन्दर स्त्रियों के शरीर, जो मूर्ख पुरुषों द्वारा दुलारे जाते हैं, प्राण-विसर्जन के पश्चात् श्मशान-गृह में ले जाये जाते हैं। पशु और कीड़े उनके मांस का भक्षण करते हैं, गीदड़ उनके चर्म और मांस को फाड़ डालते हैं। मैं इस भ्रामक, क्षणिक ऐन्द्रिय सुख को नहीं भोगना चाहता। मैं केवल उस परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करना चाहता हूँ जो जन्म-मरण के चक्र का अन्त कर दे।

वृद्धावस्था

"वृद्धावस्था देह को दुर्बल बना कर उसका सौन्दर्य समाप्त कर देती है। वृद्ध मनुष्य के साथ परिवार के सदस्य घृणा का व्यवहार करते हैं। वह असहाय अवस्था में होता है। उसकी इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं। वह अपनी इच्छाओं को तुष्ट नहीं कर पाता। उसकी स्मरण-शक्ति ठीक नहीं रहती। वह अनेक असाध्य रोगों से पीड़ित हो जाता है। भोगों के लिए अतोषणीय (तृप्त न होने वाली) कामना रहती है; परन्तु भोगने की सामर्थ्य नहीं है। इच्छाएँ (कामनाएँ) उसके हृदय को दग्ध करती हैं; परन्तु वह उन्हें सन्तुष्ट करने में असमर्थ है। मृत्यु मनुष्य के श्वेत मस्तक को एक पके हुए काशीफल की भाँति, जिसे वृद्धावस्था-रूपी नमक ने और स्वादिष्ट बना दिया है, आनन्दपूर्वक निगल जाती है। इस संसार में वृद्धावस्था अनिवार्य है। ऐसे कष्टपूर्ण सांसारिक जीवन से क्या लाभ, जो नाश और वृद्धावस्था के अधीन है?

काल

"काल इस पृथ्वी पर जीवन-रूपी धागे को काटने वाला चूहा है। इस विश्व में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो इस सब-कुछ हड़प करने वाले काल से बच सके। काल सर्वाधिक महान् मनुष्य को भी क्षण-भर के लिए नहीं छोड़ता। काल सारी वस्तुओं पर छाया हुआ है। इसका अपना दृश्यवान् रूप कुछ नहीं है, सिवाय इसके कि दिन, महीने, वर्ष और युगों के नामों से अपूर्ण रूप से जाना जाता है। काल गर्दन से पाँव तक लटकती हुई मृतकों की हड्डियों की लम्बी जंजीर बाँधे हुए नाचता है। वह प्रलय के समय भयंकर अग्नि का रूप धारण करके सारे संसार को भस्मीकृत कर देता है। उसके मार्ग में कोई नहीं आ सकता। प्रलय के अन्त में यह स्वयं अपना अस्तित्व खो कर शाश्वतता में विलीन हो जाता है। थोड़े विश्राम के पश्चात् यह फिर सबका रचयिता, पालनकर्ता, संहारक और स्मरणकर्ता बन कर प्रकट होता है। इस प्रकार काल विस्तार करता है, परिपालन करता है और अन्त में सारी वस्तुओं को क्रीड़ावत् नष्ट कर देता है।

"यह मन स्त्रियों के संसर्ग में अपना विनाश कर लेता है। फिर शरीर वृद्धावस्था के भार से झुक जाता है। मनुष्य मृत्यु के समय अपनी मूर्खता पर दुःखी होता है। जो शरीर आज रेशमी वस्त्रों और मालाओं से सुसज्जित किया जाता है, वह कल को भस्म किया जाने वाला है अथवा गहरी कब्र में गाड़ दिया जाने वाला है। भयंकर विष विष नहीं है; परन्तु भोग-पदार्थ अत्यन्त भयंकर विष हैं। विष तो केवल एक शरीर को नष्ट करता है; किन्तु भोग-पदार्थों का विष एक के बाद एक, कई जन्मों तक फैल कर अनेकों शरीरों को नष्ट करता है। यहाँ जीवन जल के ऊपर बुलबुलों की भाँति अनिश्चित है। विषय-भोग बिजली की चमक की तरह अस्थिर हैं। युवावस्था के आनन्द क्षणभंगुर हैं।

"हे सम्माननीय मुनि! मुझे ऐसा उपदेश दीजिए, जिससे मैं शीघ्र दुःख, भय और सांसारिक कष्टों से मुक्त हो कर सत्य की ज्योति प्राप्त कर सकूँ। मुझे कष्टों, दुर्बलताओं, संशयों और भ्रमों से रहित शाश्वत पद निर्दिष्ट कीजिए। हे महात्मन् ! जीवन की वह कौन-सी अवस्था है, जन्म और मृत्यु लाने वाले कष्टों से जिसका सम्बन्ध न हो? मुझे शाश्वत शान्ति, शाश्वत सुख और अमरता प्राप्त करने का उपाय बताइए।" दशरथ जी के दरबार में एकत्रित मुनियों के समक्ष राम इस प्रकार बोले ।

शुकदेव की कथा

तब विश्वामित्र ने कहा- "हे राम! तुम विवेक, वैराग्य, शुद्ध मति, बुद्धिमत्ता और स्पष्ट बोध से सम्पन्न हो। तुम्हारे लिए अधिक सीखने को कुछ नहीं है। तुम्हारे पास महर्षि व्यास के पुत्र शुक-जैसा आध्यात्मिक ज्ञान है। यद्यपि शुक को अन्तर्प्रज्ञा से ज्ञान हुआ था; फिर भी उन्हें अपने आध्यात्मिक अनुभवों के पुष्टिकरण के लिए कुछ निर्देश अपेक्षित थे।"

राम बोले- "हे मुनि! मुझे बतलाइए कि शुक, जिन्हें पहले अपने ज्ञान के विषय में निश्चय नहीं था, किस प्रकार बाद में वे अपने विश्वासों में स्थिर हुए।"

विश्वामित्र जी बोले- "हे राम ! मैं तुम्हें शुकदेव की कथा सुनाता हूँ, जिनका मामला ठीक तुम्हारे-जैसा है। उनमें महान् आध्यात्मिक ज्ञान था। वे इस संसार की मिथ्या प्रकृति पर गम्भीरता से चिन्तन करते थे और तुम्हारी ही भाँति इसके सारे सम्बन्धों से उदासीनता का भाव रखते थे। यद्यपि वे अध्यात्म-ज्ञान से सम्पन्न थे, फिर भी उनके मन में अस्थिरता थी। उन्हें अपने ज्ञान की निश्चितता में दृढ़ विश्वास नहीं था; फि अतः उनके मन में शान्ति नहीं थी। उन्होंने अपने पिता के पास जा कर निम्नांकित प्रश्नों का समाधान पूछा- 'कष्ट उत्पन्न करने वाली माया कहाँ से

आयी? किस प्रकार इसका निराकरण होता है? इसका क्या कारण है? यह कहाँ तक फैलती है? कहाँ इसका अन्त होता है? संसार की उत्पत्ति कब हुई ?'

"व्यास जी ने इस विषय में सब-कुछ स्पष्ट रूप से समझाया। शुक को सन्तोष नहीं हुआ। यह सब-कुछ वे स्वयं जानते थे। तब व्यास जी ने अपने पुत्र को उसके प्रश्नों का हल प्राप्त करने हेतु जनक जी के पास भेजा। शुक विदेहनगरी में गये। दरबान ने व्यास जी के पुत्र शुक के आने का समाचार राजा को दिया; परन्तु वे उनके स्वागतार्थ आगे नहीं आये, क्योंकि वे उनकी समचित्तता की परीक्षा करना चाहते थे। शुक को सात दिन तक बिना भोजन के ड्योढ़ी पर प्रतीक्षा करनी पड़ी और फिर भी उनका मन किंचित् अशान्त नहीं हुआ। फिर उन्हें और सात दिन तक बाहर के अहाते में रोका गया। तत्पश्चात् उन्हें राजभवन के अन्तर कक्ष में ले जाया गया। यहाँ उन्हें भली प्रकार से स्वादिष्ट भोजन परोसा गया और सुन्दर स्त्रियों द्वारा पुष्प, सुगन्धित द्रव्य और चन्दन आदि से सम्मानित किया गया। परन्तु शुक बिलकुल उदासीन रहे। न वे कष्ट, न ये मनोरंजन शुक के मन की दशा को प्रभावित कर सके, जो हवा के झोंकों के सामने चट्टान की भाँति स्थिर था। इन परीक्षणों से जनक समझ गये कि शुक ने परम शाश्वत शान्ति प्राप्त कर ली है।

"जनक जी उठे और ब्रह्मर्षि को नमस्कार करके बोले- 'तुमने जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। विश्व के सारे सम्बन्धों को त्याग कर तुमने परमोच्च फल प्राप्त कर लिया है। कृपया बताओ कि अब तुम यहाँ क्यों आये हो? हे महात्मन्! मैं सदैव तुम्हारी सेवा में तत्पर हूँ।'

"शुक बोले- 'माया कैसे उत्पन्न हुई? वह कैसे बढ़ती है और किस प्रकार नष्ट होती है? हे सम्माननीय गुरु! कृपया मुझे विस्तार से समझाए।'

"जनक ने उन्हें वही बात बतायी, जो उन्होंने उसके पिता व्यास जी से सीखी थी।

"तब शुक बोले- 'ये सब तो मैं पहले से ही अपनी अन्तर्प्रज्ञा से जानता था और मेरे प्रश्नों के उत्तर में पिता जी ने भी यही बताया है। आप भी मुझसे वही बात कर रहे हो और शास्त्रों का वास्तविक अभिप्राय भी यही है। इस नाशवान् माया से किंचित् भी लाभ नहीं होता, जिसका उदय श्वास अथवा स्फुरणा के रूप में ब्रह्म से होता है और फिर ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है। कृपया आत्मन् अथवा ब्रह्म की प्रकृति पर प्रकाश डालिए।'

"राजा जनक ने उत्तर दिया- 'केवल ब्रह्म ही है। वह अक्षुण्ण है, अविभाज्य और स्वयंप्रकाशी है। सम्पूर्ण चिदाकाश की भाँति वह सर्वव्यापक है। ब्रह्म के सिवाय और कुछ नहीं है। वह ज्ञान उसके निज संकल्प से बद्ध है और संकल्पों के त्याग से मुक्त होता है। तुमने परम आत्मा का सही ज्ञान प्राप्त कर लिया है। तुमने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है। अतएव, तुममें ऐन्द्रिक भोगों के लिए न आसक्ति है और न कामना। तुमने प्राप्त करने योग्य सब-कुछ पा लिया है। जो भी प्राप्य है, तुमने प्राप्त कर लिया है। तुम एक वीर हो, क्योंकि तुमने सारी कामनाओं पर विजय प्राप्त कर ली है। तुम पूर्ण जीवन्मुक्त हो। तुम परमात्मा से एकरूप हो गये हो|'

"राजा जनक ने शुक को आत्मिक रहस्यों में दीक्षित किया। शुक परमात्मा में चित्त को स्थिर किये हुए मौन रहे। उनके समस्त संशय और विक्षेप पूर्णतया समाप्त हो गये। वे माया के भ्रम से मुक्त हो गये। वे एक सहस्र वर्ष तक निर्विकल्प समाधि में रहे। जिस प्रकार जल की एक बूंद सागर में विलीन हो जाती है, उसी प्रकार शुक ने स्वयं को परम सत्ता में अर्थात् सुख के सागर में विलीन कर लिया।"

विश्वामित्र जी कहने लगे- "हे राम ! तुम्हें भी शुक द्वारा अपनाये हुए मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। जिसे आत्मज्ञान हो गया है, उसे सांसारिक भोग अच्छे नहीं लगेंगे। वह पदार्थों के साथ अपने को सम्बद्ध नहीं

करेगा। पदार्थों के प्रति प्रतिकूल भाव अर्थात् अनिच्छा होना अति कठिन है। यदि मन पदार्थों की ओर प्रवृत्त होता है, तो बन्धन दृढ़तर हो जाता है। यदि प्रवृत्ति नहीं है, तो बन्धन शिथिल होता है और अन्ततः वह नष्ट हो जाता है। वासनाओं का नाश होना ही मोक्ष है। वासना द्वारा विषय-भोगों का पिपासु मन बन्धन की ओर अग्रसर करता है। जिन्होंने वासनाओं को नष्ट कर दिया है और सांसारिक सुखों के प्रति उदासीन भाव रखते हैं, वे जीवन्मुक्त सन्त हैं।"

इस पर सन्तों की सभा को सम्बोधित करते हुए विश्वामित्र जी बोले- "जो-कुछ राम ने अपनी अन्तर्प्रज्ञा से जाना है, वह उनके चित्त की शान्ति के लिए वसिष्ठ जी द्वारा अनुमोदित होना चाहिए। पूज्य वसिष्ठ जी मनस्वी राम को समुचित रूप से समझा करके उन्हें मानसिक शान्ति प्रदान करें। केवल वे ही राम के संशयों का निराकरण करके उन्हें शान्त और आनन्दित कर सकते हैं, क्योंकि वे ज्ञानी हैं।"

विश्वामित्र ने वसिष्ठ जी से कहा- "श्रीमान्! आपको स्मरण होगा कि ब्रह्मा जी ने हमारे पास्परिक द्वेष को मिटाने एवं सारे प्राणियों के कल्याण-संवर्धन हेतु निर्देश, ज्ञानपूर्ण प्रवचन और ज्ञानगर्भित कथाएँ कहीं थीं। ये बातें अब आपके द्वारा राम को बतायी जानी चाहिए। ये ही अब उन्हें चित्त की शान्ति प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होंगी। जो कामना रहित है, जिसने इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है, वही गुरु-दीक्षा से लाभान्वित हो सकता है। किन्तु एक अनधिकारी, जो संसार से ऊबा नहीं है, को दिया हुआ उपदेश इसी प्रकार दूषित हो जाता है जैसे श्वान के चर्म से बने थैले में रखा दूध।"

दशरथ के दरबार में एकत्रित हुए सारे सन्त-मुनि विश्वामित्र जी के उत्कृष्ट उद्गारों के लिए साधुवाद करने लगे।

तब वसिष्ठ जी ने कहा- "हे महात्मन्! मैं आपके आदेश का पालन करूँगा। सज्जन और ज्ञानी जन के उद्‌गारों का पालन करने को कौन ना कह सकता है? मैं अब राम को शुद्ध ज्ञान की कथाएँ सुनाऊँगा, जो निषाद पहाड़ियों पर कमलयोनि ब्रह्मा द्वारा स्थिर चित्त, शुद्ध और गुणी जनों को जन्म-मरण के चक्र से छुड़ाने हेतु कही गयी थीं।"

तब वसिष्ठ जी ने राम को उनके संशयों का समाधान करने और उन्हें परम शान्ति एवं शाश्वत सुख का मार्ग दर्शाने हेतु निम्नांकित कथाएँ सुनायीं।

२.मुमुक्षु-प्रकरण

मुमुक्षुत्व

हरि ॐ! वेदान्त अथवा ज्ञानयोग के साधक को साधन-चतुष्टय से सम्पन्न होना चाहिए : विवेक अर्थात् सत् और असत् के बीच भेद; वैराग्य-इहलोक और परलोक के भोगों के प्रति उदासीनता; षड्‌गुण सम्पत्ति-शम (मन की शान्ति), दम (इन्द्रिय-संयम), उपरति (कर्मों का त्याग), तितिक्षा (सहनशीलता), श्रद्धा (विश्वास) और समाधान (चित्त की एकाग्रता); और अन्तिम मुमुक्षुत्व अर्थात् मुक्ति के लिए उत्कण्ठा। इस अध्याय में मुमुक्षुत्व का वर्णन है।

वसिष्ठ जी राम से इस प्रकार बोले- 'पुरुषार्थ के द्वारा इस संसार में कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। मनुष्य किसी भी विपत्ति पर विजय प्राप्त कर सकता है। आत्मज्ञान सम्बन्धी शास्त्रों की दिशा में प्रयत्नशीलता मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करती है। सांसारिक ज्ञान सम्बन्धी सामान्य शास्त्रों की दिशा में प्रयत्नशील होना बन्धन का कारण होता है। जो इन साधन-चतुष्टय एवं अन्य गुणों से सम्पन्न हैं, जो सन्तों का संग करते हैं और किशोरावस्था से ही आत्मज्ञान सम्बन्धी शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं, वे मोक्ष प्राप्त करते हैं।

"प्रत्येक मनुष्य को सही दिशा में प्रयत्नशील होते हुए आत्मज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ कर और सन्तों के ज्ञानप्रद उपदेशों पर चल कर पूर्णता प्राप्त करनी चाहिए। 'भाग्य' अज्ञानियों के मस्तिष्कों में बैठा हुआ एक मिथ्या विचार है।"

राम बोले-"पूर्व-जन्म की वासनाएँ मुझे सही प्रयत्न करने से रोकती हैं, हे श्रद्धेय गुरु! मुझे मार्ग-दर्शन दें कि क्या करूँ?"

वसिष्ठ मुनि ने उत्तर दिया-"हे मनस्वी राघव ! अविनाशी ब्रह्म मनुष्य के अपने प्रयत्नों से ही प्राप्त किया जा सकता है। जो वासनाएँ मनुष्य के द्वारा उसके पूर्व-जन्म में उत्पन्न की गयी थीं, वे कई जन्मों तक उससे चिपकती रहेंगी। दो प्रकार की वासनाएँ होती हैं-शुभ और अशुभ वासनाएँ। अशुभ वासनाएँ पुनर्जन्मों का कारण बनती हैं और शुभ वासनाएँ पुनर्जन्मों से मुक्ति दिलाती हैं। यदि उसमें शुभ वासनाएँ रहेंगी, तो वह आत्म-साक्षात्कार करेगा और यदि अशुभ वासनाएँ रहेंगी, तो उसे कष्ट और विपत्तियाँ सहनी पड़ेंगी तथा बारम्बार जन्म लेना पड़ेगा। हे राम ! अशुभ वासनाओं को त्याग कर शुभ वासनाएँ उत्पन्न करो और शुद्ध, सर्वव्यापक ब्रह्म का नियमित रूप से स्थि ध्यान करो। यदि तुम शुभ वासनाओं की वृद्धि करोगे, तो अशुभ वासनाएँ स्वयं ही मर जायेंगी। तुम्हारे लिए जो मार्ग निर्दिष्ट किया गया है, उसका श्रमपूर्वक अनुसरण करो और उपनिषदों के महावाक्यों के अर्थ का मनन करो जब तक तुम्हें पूर्णबोध प्राप्त न हो जाये। ऐन्द्रिक पदार्थों की कामना से अपने को मुक्त करके शाश्वत सुख प्राप्त करो।

"हे राम! मेरी अपनी कहानी सुनो। ब्रह्मा ने मुझे अपने संकल्प से स्वयं जैसा ही सृजित किया। उन्होंने मुझे आत्मा का सत्य ज्ञान दिया। उन्होंने मुझे आदेश दिया- 'जम्बू द्वीप के भारतवर्ष नामक देश में जा कर साधन-चतुष्टय से सम्पन्न लोगों को ब्रह्मज्ञान के रहस्यों में दीक्षित करो।'

"मोक्ष के द्वार पर चार द्वारपाल रहते हैं। ये हैं-शान्ति, विचार, सन्तोष और सत्संग। यदि तुम इन चार द्वारपालों से मित्रता कर लो, तो वे तुम्हारे लिए मोक्ष-धाम के द्वार खोल देंगे। यदि तुम इनमें से एक से भी मित्रता कर लो, तो वह शेष तीन से तुम्हारा परिचय करा देगा। स्वाध्याय (धर्मशास्त्रों का अध्ययन), सत्संग और ब्रह्म अथवा पवित्र अमर आत्म-तत्त्व पर सतत ध्यान के द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करो। आत्मा का ज्ञान पुनर्जन्मों के चक्र को समाप्त कर देगा।

"अज्ञान-रूपी सर्प से डसा हुआ मनुष्य ज्ञान-रूपी गरुड़-मन्त्र से ठीक हो जायेगा। ज्ञान प्राप्त होने पर, मन पूर्ण समता प्राप्त कर लेगा। उसके ऊपर तीरों की वर्षा भी होगी, तो वह पुष्पों जैसी प्रतीत होगी; लपटों की शय्या उसे गुलाब-जल छिड़की हुई कोमल शय्या जैसी प्रतीत होगी। मनुष्य में आत्मज्ञान का उदय तभी होगा, जब वह तीनों स्रोतों-अपने निजी अनुभव से, उपनिषदों के महावाक्यों के यथार्थ अर्थों से और गुरु के उपदेशों से प्राप्त ज्ञान को स्वयं में समाहित कर ले। जिन लोगों में कुशाग्र, सूक्ष्म और शुद्ध बुद्धि, साहसिक समझ और दृढ़ संकल्प-शक्ति नहीं है, उन्हें शास्त्रों के अध्ययन से लाभ नहीं हो सकता। गंगा-स्नान, तप और तीर्थयात्रा तुम्हारे चित्त को शुद्ध कर देंगे; परन्तु निर्मल ब्रह्मपद को प्राप्त करने में तुम्हारी सहायता नहीं कर सकते। पूर्ण प्रयास तथा

दीर्घकालिक एवं सतत ध्यान द्वारा परम आत्मा पर चित्त को स्थिर करने से ही परमानन्द की स्थिति प्राप्त की जा सकती है।

शान्ति

"चित्त की शान्ति और हृदय की स्थिरता प्राप्त होने पर इन्द्रियाँ भी शान्त और स्थिर (मौन) हो जाती हैं। फिर प्रत्येक वस्तु समत्व के प्रकाश में दृश्यमान् होती है। मन की यह शान्ति वासनाओं के समूल नाश से प्राप्त होती है। यदि मनुष्य शान्ति में स्थित हो जाये, तो उसके चित्त को कोई विक्षिप्त नहीं कर सकता। उसका चित्त सदा शान्त रहेगा। अपमान होने पर, उत्पीड़ित किये जाने पर, आहत होने अथवा चोट खाने पर भी उसके चित्त की शान्ति भंग नहीं होगी।

"महान् सन्त और ऋषि, शान्ति-रूपी कवच से अपने-आपको सुरक्षित कर आज भी शान्त चित्त से विश्व के कठिन कार्यों में संलग्न हैं।

"अन्तिम सुख चित्त की शान्ति से ही उत्पन्न होता है और प्राप्य है। ऐन्द्रिक सुखों की पिपासा एक दीर्घकालिक रोग है। यह विश्व मृगमरीचिका से परिपूर्ण है। यह सारा शुष्क और सूखा है। इस शुष्कता को शान्ति ही हरा कर सकती है। शान्ति ही सबको भलाई की ओर अग्रसर करती है। शान्ति से प्राप्त सुख के समान सुख अन्यत्र कहीं से प्राप्त नहीं हो सकता। शान्त प्रकृति का मनुष्य हार्दिक आनन्द अनुभव करता है और उसे अपने चित्त से स्वतःस्फुरित उच्चतम सत्य के शान्तिप्रद प्रभाव की अनुभूति होती है। इस दुर्लभ गुण से सम्पन्न व्यक्ति इस संसार में देदीप्यमान सूर्य की भाँति प्रकाशमान् होता हुआ सरलता से मोक्ष प्राप्त कर लेता है। हे राम ! तू भी इस शान्ति, मधुर शान्ति से युक्त हो!

आत्म-विचार

"आत्म-विचार अज्ञानता-रूपी बादलों को छिन्न-भिन्न करके आत्मा का ज्ञान कराता है। पुनर्जन्म के चिरकालिक रोग के निवारण की यही एकमात्र औषधि है। भय, कष्ट और विपत्ति-काल में यह तुम्हारा साथी है। आत्म-विचार के दिव्य वृक्ष का फल 'मोक्ष' है। आत्म-विचार वासनाओं और विचारों को तथा स्वयं मन को भी नष्ट करता है। यह जीवन-लक्ष्य पर पहुँचने के लिए कार्य-कारण का भेद करने में तुम्हारी सहायता करता है। यह शाश्वत आनन्द प्रदान करता है। हे उच्च मानस राम! पूछो- 'मैं कौन हूँ? मैं कहाँ से आया? यह रहस्यमय संसार कहाँ से आया?' ऐसी खोज अज्ञान को नष्ट करके आत्मा का ज्ञान अर्थात् 'ब्रह्मज्ञान' प्रदान करेगी जो तुम्हारे मोक्ष का दाता होगा।

सन्तोष

"सन्तोष सर्वश्रेष्ठ गुण है; सन्तोष ही सच्चा आनन्द है और सन्तुष्ट व्यक्ति को सर्वोपरि शान्ति प्राप्त होती है। सन्तोष से सम्पन्न मनुष्य के लिए विश्व का साम्राज्य भी भूसे से अधिक नहीं है। उसे पदार्थों के भोग विष के समान प्रतीत होते हैं। उसका चित्त उच्चतर आध्यात्मिक विषयों और आत्म-विचार की ओर प्रवृत्त होता है। उसे अन्तर्मन से आनन्द प्राप्त होता है। वह विपरीत परिस्थितियों में भी अशान्त नहीं होता। सन्तोष सारी बुराइयों का शमन करता है। लोभ या लालच-रूपी भयंकर रोग के उपचार के लिए यह रामबाण औषधि है। सन्तोष द्वारा शान्ति को

प्राप्त हुआ मन सदैव शान्त रहता है। सन्तुष्ट व्यक्ति पर ही दिव्य प्रकाश अवतीर्ण हो सकता है। सन्तोषी मनुष्य भले ही निर्धन हो; परन्तु वह अखिल विश्व का सम्राट् है। सन्तुष्ट वह है जो अपने पास जो कुछ नहीं है, उसकी कामना नहीं करता और जो कुछ है, उसे सही ढंग से भोगता है। बिना प्रयास के जो-कुछ प्राप्त हो जाता है, वह उसी से सन्तुष्ट रहता है। वह विशाल हृदय और सौम्य होता है। ऋद्धि-सिद्धि उसकी सेवा में उपस्थित रहती हैं। वह चिन्ताओं और परेशानियों से मुक्त रहता है। सन्तोषी व्यक्ति की शान्त मुखाकृति उसके सम्पर्क में आने वालों के लिए भी आनन्दप्रद होती है। ऐसा मनुष्य तपस्वियों एवं सारे महापुरुषों के सम्मान का पात्र बनता है।

सत्संग

"संसार-रूपी भीषण समुद्र को पार करने के लिए सत्संग नाव का काम करता है। सन्तों का क्षण-भर का संग भी अत्यन्त लाभप्रद होता है। महात्माओं के दर्शन मात्र पापों को नष्ट करके मन को ऊँचा बनाते हैं। गुणी जनों की संगति विवेक-रूपी अभिनव पुष्प उत्पन्न करती है। सन्तों की संगति सारी विपत्तियों का निवारण करके अज्ञान-रूपी वृक्ष को नष्ट करती है। सन्त जन साधकों के लिए आचरण के सर्वोत्तम नियम निर्धारित करके उन्हें जीवन-यापन की सही विधि सिखाते हैं। गुणी जनों का संसर्ग, सही मार्ग प्रकाशित करके मनुष्य का आन्तरिक अन्धकार नष्ट करता है। सन्तों का संसर्ग माया और इस भीषण मन पर विजय प्राप्त करने का अचूक साधन है।

"सन्तोष, सत्संग, आत्म-विचार और शान्ति आत्मज्ञान -प्राप्ति के साधन- चतुष्टय हैं। जो इन चार साधनों से सम्पन्न हैं, उन्होंने संसार-रूपी सागर को पार कर लिया है। सन्तोष सर्वश्रेष्ठ लाभ, सत्संग सही मार्ग, आत्म-विचार सत्य ज्ञान और शान्ति मनुष्य के लिए परम सुख माना जाता है। जिसके पास ये चार साधन हैं, उसे समस्त समृद्धियाँ और सफलता प्राप्त होती हैं। ज्यों ही इनमें से एक गुण विकसित होता है, वह तुम्हारे उच्छृंखल मन के दोषों की शक्ति को क्षीण करने लगता है। गुणों का संवर्धन दोषों को दबाने और उनके समूल नाश करने का मार्ग प्रशस्त करता है; इसके विपरीत, दुर्गुणों को बढ़ावा देने से उनकी वृद्धि होगी और गुणों का लोप होगा। मन दोषों का एक वन है जिसमें शुभ और अशुभ-रूपी दो तटों के मध्य कामना-रूपी नदी प्रबल वेग से प्रवाहित है। "अतएव, हे राम! वीरतापूर्वक अपने मन पर नियन्त्रण करके, जीवन में अपने व्यवहार के लिए उपर्युक्त चार साधनों को परिश्रमपूर्वक विकसित करो।

"जो आत्म-विचार का नियमित अभ्यास करता है, वह संसार के कष्टों और विपत्तियों से कभी सन्तप्त नहीं होगा। उसमें सदैव समचित्तता और समदृष्टि रहेगी। वह सदा शान्त और प्रसन्न रहेगा। माया उसके पास नहीं फटकेगी। वह सदा अक्षय एवं स्वयं प्रकाशमान आत्मा के ध्यान में संलग्न रहेगा।

"मनुष्य को सदा आत्मज्ञान-विषयक ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए, सन्तों का संसर्ग रखना चाहिए, 'साधन-चतुष्टय' एवं सही आचरण विकसित करना चाहिए, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके, आत्म-विचार के अभ्यास में संलग्न रहना चाहिए जब तक उसके अन्तर्मन में आत्मज्ञान उदय न हो जाये।

"जीवन्मुक्त व्यक्ति पूर्णरूपेण वासना रहित, मैं-मेरा रहित, निर्भय और क्रोध रहित होता है। वह सर्वत्र आत्मा का ही दर्शन करता है। उसमें समता का भाव और सन्तुलित मन अर्थात् समाहित चित्त रहता है। उसमें कोई आसक्ति, इच्छा और एषणा नहीं होती। उसकी स्थिति अवर्णनीय होती है और फिर भी वह संसार में सामान्य जन की भाँति घूमता-फिरता है। वह सदैव निश्चल एवं शान्त रहता है। वह तुरीयावस्था में रहता है। शुद्ध, सर्वव्यापक ब्रह्म से एकरूप है। वह द्वैत-भाव, भेद-भाव और भिन्नताओं से मुक्त है।

"हे वीर राम! तुम एक बालक तक के शब्दों में विश्वास रख सकते हो यदि वह श्रुतियों के वाक्यों, गुरु के उपदेशों और तुम्हारे अपने अनुभवों से एकरूप रहता है। अन्यथा ब्रह्मा के वचनों को भी फूस के रागान अस्वीकृत

कर देना चाहिए। हे साहसी राघव! यह समझ लो कि विभिन्न प्रकार के दृष्टान्त तुम्हारे अन्तःस्थित आत्मा के ज्ञान की उत्पत्ति हेतु और तुम्हें अद्वैत ब्रह्म अथवा परम सत्ता की प्रकृति समझाने के लिए दिये जाते हैं।

"ज्ञान और उपर्युक्त चार गुण साथ-साथ रहते हैं। वे एक-दूसरे के सान्निध्य में रहते हुए प्रकाशमान होते हैं। ये दोनों एक तालाब और उसमें उगने वाले कमल के फूलों की भाँति समृद्धि को प्राप्त होते हैं। यदि ये दोनों साथ-साथ विकसित होते रहते हैं, तो तुम तीव्रता से आत्मज्ञान प्राप्त कर लोगे।

"हे गुणी राम! तुम इन कथाओं को सुनो, जो तुम्हारे समस्त संशयों, विक्षेपों और भ्रमों का निवारण करके जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होंगी। जो इन ज्ञानपूर्ण कहानियों को सुनेगा, इनके अनुसार आचरण करेगा, निश्चय ही यथार्थ वैराग्य, अविनाशी और अक्षुण्ण आध्यात्मिक धन, शाश्वत सुख, परम शान्ति, आध्यात्मिक प्रकाश और अन्तिम मोक्ष प्राप्त करेगा।"

३.उत्पत्ति-प्रकरण

सृष्टि

वसिष्ठ जी राम से बोले-"ब्रह्म नित्य-शुद्ध, अद्वैत, सर्वव्यापक, सम्पूर्ण, लोकातीत, अमल, अवर्णनीय, अनन्त और पूर्ण है। दृश्य, परिवर्तनीय संसार अदृश्य, अपरिवर्तनीय ब्रह्म से प्रकट हुआ है। यह माया-ब्रह्म की मिथ्या शक्तिकी बहुरूपता के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सच्चिदानन्द ब्रह्म इस सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त है। यह मन के द्वारा ही प्रकट होता है। यह विश्व मन के द्वारा ही सत्य प्रतीत होता है। यह विश्व एक दीर्घ स्वप्न की भाँति है।

मन संकल्पों और विकल्पों के द्वारा प्रसारित होता है। मन अपनी कल्पना द्वारा इस विश्व का विस्तार करता है, जो 'गन्धर्व नगर' के समान मिथ्या है।

"जीव अथवा वैयक्तिक आत्मा अपने में चैतन्यता का अनुभव करती है, और 'मैं क्या हूँ?' इस विचार से उसे अपने अहंकार का बोध होना है। अहंकार मन के संकल्प से उत्पन्न होता है। लकड़ी के दो टुकड़ों को रगड़ने से थोड़ी-सी अग्नि उत्पन्न होती है। यह थोड़ी-सी चिनगारी बड़ी लपट के रूप में बढ़ जाती है। इसी प्रकार, जीव का अहं-भाव विभिन्न पदार्थों के विभिन्न अनुभवों के द्वारा बढ़ता जाता है। छोटा-सा 'मैं' उत्तरोत्तर दृढ़ होता जाता है। 'मेरे'-पन का विचार गहरायी से पैठ जाता है।

"जब अँधेरी रात में, सड़क पर पड़े हुए लकड़ी के लट्टे का ज्ञान नहीं होता, तो लट्टे के भीतर चोर का विचार उत्पन्न होता है। इसी प्रकार, जब इस बात का ज्ञान नहीं होता कि यह सब-कुछ ब्रह्म या आत्मा है, तब इस संसार के यथार्थ होने का विचार उत्पन्न होता है। तत्त्वतः जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। जब अविद्या की उपाधि दूर हो जाती है, तो जीव उसी प्रकार ब्रह्म से एकरूप हो जाता है, जिस प्रकार घट टूटने पर घटाकाश महाकाश से। इसी प्रकार, मन और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है।

कर्कटी की कथा

"हे राम! अब मैं तुम्हें एक शक्तिशाली राक्षसी की अत्यन्त रुचिकर कथा सुनाता हूँ, जिसने कई बौद्धिक प्रश्न हल करने के लिए उपस्थित किये। इससे तुम्हारे सारे संशय दूर हो जायेंगे।

"हिमालय के उत्तरी ढाल पर एक कर्कटी नाम की राक्षसी रहती थी। वह स्याही जैसी काली और चट्टान के समान कठोर थी। उसके अंग इतने मजबूत थे कि वह कठोर शाल-वृक्ष को भी चीर सकती थी। उसका बहुत बड़ा मुख था और पैने दाँत थे। उसके नेत्रों की पुतलियाँ आग की तरह चमकती थीं। उसकी दो जाँचें विशाल खजूर के वृक्षों जैसी थीं। उसकी जोर की हँसी मेघ गर्जन जैसी होती थी। उसके तीखे नुकीले नाखून कटार जैसे थे।

"इस बड़े पेट वाली राक्षसी की कभी शान्त न होने वाली क्षुधा, किसी से भी शान्त नहीं हो सकती थी। यदि पूरे जम्बूद्वीप के समस्त जीव भी उसके शिकार बन जायें, तब भी उसका थोड़ा-सा ही भोजन होगा। उसने हिमालय पर जा कर कठोर तपस्या की। स्नान करके वह पृथ्वी पर एक टाँग से खड़ी हो गयी और अपनी दृष्टि को सूर्य पर केन्द्रित किया। ऐसा तप उसने एक हजार वर्षों तक किया। उसने अपने विशाल शरीर को गरमी और सरदी की भी भीषणता को सहन करने हेतु प्रस्तुत कर दिया।

"एक हजार वर्षों के पश्चात् ब्रह्मा जी उसके समक्ष प्रकट हुए। उसने मानसिक रूप से उन्हें नमन किया और अपने मन में सोचने लगी- 'यदि मैं एक लोहे जैसी जीव सूचिका (जीवित सुई) बन जाऊँ, तो विश्व-भर के सारे जीवों के शरीर में प्रवेश कर सकूँगी और जितना आवश्यक हो, उतना भोजन कर सकूँगी। मैं अपने मन की सन्तुष्टि पर्यन्त जीवों का रक्त चूस सकूँगी और उत्तरोत्तर बढ़ती हुई क्षुधाग्नि को शान्त करूंगी।'

"जब वह इस प्रकार विचार कर रही थी, तो ब्रह्मा जी बोले-'हे कर्कटी! मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहती हो, वही वरदान मैं तुम्हें दूँगा। दुष्ट मनुष्य तक कठोर तपस्या के बल से मुझसे कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं।'

"कर्कटी ने कहा- 'मैं जीव सूचिका हो जाऊँ-जीवित सुई।'

"ब्रह्मा जी बोले-'तथास्तु, तुम जीव सूचिका बन जाओगी, तुम्हारे नाम के साथ 'वि' उपसर्ग लगा कर तुम 'विसूचिका' कहलाओगी। तुम उन लोगों को पीड़ित करोगी, जो अखाद्य भोजन करेंगे, जो असंयमी हैं, जो दुष्ट प्रकृति हैं और जो अस्वच्छ स्थानों में रहते हैं। तुम आँतों में वायु के रूप में रहोगी और पित्त-प्रकोप, उदर-वायु, आन्त्र-शूल, हैजे और तिल्ली के बढ़ने का कारण बनोगी।'

"यह कह कर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गये। कर्कटी ने जीव सूचिका का रूप धारण कर लिया और सारे जीवों के शरीरों में प्रवेश करके उनके रुधिर पर निर्वाह करने लगी। वह अति सन्तुष्ट थी। उसकी भूख शान्त हुई। फिर वह मन में सोचने लगी- 'मैंने व्यर्थ में ही अनेक लोगों को कष्ट दिया। मेरा हृदय अति क्रूर है। अब मैं ऐसा जीवन व्यतीत करना नहीं चाहती हूँ। मैं पुनः तपस्या करके ज्ञान प्राप्त करूँगी।'

"उसने फिर हिमालय पर जा कर एक हजार वर्ष तक तपस्या की। उसके पापों की निवृत्ति हो गयी और वह प्रेम एवं घृणा से मुक्त हो गयी। उसके हृदय में ज्ञान का उदय हो गया। उसने ज्ञान का प्रकाश ग्रहण किया और यथार्थ ज्ञान को प्राप्त किया। उसे अपनी आत्मा में यथार्थ सुख की अनुभूति हो गयी।

"अब ब्रह्मा जी ने स्वयं आ कर उससे कहा- 'हे कर्कटी! तुम्हें अब बोध प्राप्त हो गया है। तुम जीवन्मुक्त हो गयी हो। तुम अपने पुराने राक्षसी रूप में रहो। जो आत्मज्ञान रहित हैं और जो क्रूर प्रकृति तथा दुष्ट हैं, उन्हें खा कर अपना जीवन-निर्वाह करो। अज्ञानियों के पास जा कर उस ज्ञान से उन्हें प्रकाशित करो, जो तुमने प्राप्त किया है; क्योंकि अज्ञानियों को उनके दोषों से मुक्त करना भले एवं महान् व्यक्तियों की प्रकृति है। जो कोई तुम्हारे द्वारा दिये ज्ञान को ग्रहण न करे, उसे तुम अपना भोजन बना लो।' यह कह कर ब्रह्मा जी अन्तर्धान हो गये।

"कर्कटी अद्वैत ब्रह्म पर गम्भीर ध्यान लगा कर दीर्घकाल तक निर्विकल्प समाधि में रही। सामान्य अवस्था में आने पर वह क्षुधा की पीड़ा अनुभव करने लगी। शरीर अपनी प्रकृत स्थिति में जब तक रहता है, तब तक अपने धर्म अर्थात् भूख आदि को नहीं छोड़ता। उसने सोचा कि भोजन के लिए जानवरों को मारना पाप है। अतः वह हिमालय की घाटियों में शिकारियों के गाँव में पहुँची। उसने सोचा कि ब्रह्मा जी के निर्देशानुसार अज्ञानियों के शरीरों को भक्षण करेगी। रात्रि के अन्धकार में उसने एक राजा और उसके मन्त्री को जंगल में घूमते हुए देखा। राजा का नाम विक्रम था। कर्कटी यह सोच कर हर्षित हुई कि अन्ततोगत्वा उसे उपयुक्त भोजन मिल ही गया। वह उसकी परीक्षा लेना चाहती थी कि वे ज्ञानी है या नहीं।

"वह चिल्लायी- 'तुम कौन हो? तुम सन्त हो या अज्ञानी जन? तुम मेरा अच्छा शिकार बने हो और क्षण-भर में मेरे हाथों तुम्हारे भाग्य का निर्णय होने वाला है।'

"राजा ने उत्तर दिया- 'हे राक्षसी! अधिक डींग मत मारो। तुम तुरन्त अपनी शक्ति दिखाओ। तुम वास्तव में चाहती क्या हो? केवल अज्ञानी जन अपने कर्मों का फल चाहते हैं। ज्ञानी लोग सदा निष्काम भाव से कर्म करते हैं। हम तुम जैसे दुष्ट जनों को मच्छरों की भाँति फूँक से उड़ा सकते हैं। हम स्वप्न में भी किसी व्यक्ति को कुछ भी देने की सामर्थ्य रखते हैं। ज्ञानी जन बुद्धि एवं अभ्यासगत ज्ञान सहित, शान्त चित्त से कार्य करते हैं।'

"कर्कटी को संशय होने लगा कि वे ज्ञानी हैं। वह मन में इस प्रकार चिन्तन करते लगी-'ये लोग सामान्य प्रकार के नहीं हैं। एक शुद्ध, ज्ञानवान् मनुष्य वाणी, मुखाकृति और नेत्रों से परखा जा सकता है। उसकी अन्तरात्मा उसके मुख और नेत्रों की बाह्य मुद्राओं में और उसकी वाणी की अभिव्यक्ति में झलकती है। शब्द, मुख और नेत्र ज्ञानी के आन्तरिक विचारों को अभिव्यक्त करते हैं। ये समुद्र में नमक और पानी की भाँति अभिन्न होते हैं। ज्ञानी का मन, शब्द और क्रिया एकरूप होते हैं; परन्तु मूर्खों में दे तीनों भिन्न होते हैं। ये लोग मेरे द्वारा नष्ट नहीं किये जा

सकते; क्योंकि अपने ज्ञान, नैतिक उच्चता के कारण ये अविनाशी हैं। ये अध्यात्म-ज्ञान से सम्पन्न हैं, जिसके बिना शुद्धि नहीं हो सकती। आत्मा की अमरता का ज्ञान मृत्यु का भय दूर कर देता है।'

"तब कर्कटी बोली- 'हे निष्पाप लोगो ! मुझे बताओ, इतने वीर और साहसी तुम कौन हो और कहाँ से आये हो?'

"मन्त्री ने उत्तर दिया- 'ये किरातों के राजा हैं और मैं इनका मन्त्री हूँ। हम रात्रि में इस देश में पहरा देते हैं तथा गुणी जनों की रक्षा और दुष्टों को दण्डित करते हैं।'

"कर्कटी कहने लगी- 'एक दुष्प्रकृति मन्त्री के परामर्श से एक अच्छा राजा भी दुष्ट बन जाता है; और एक दुष्ट राजा गुणी बन सकता है यदि वह गुणी मन्त्री का विवेकपूर्ण परामर्श मानता है। इसी प्रकार एक बुद्धिमान् और गुणी राजा एक गुणी मन्त्री बना सकता है; दुष्ट राजा बुरा मन्त्री बना सकता है। यदि एक गुणी राजा बुद्धिमान् और गुणी मन्त्री के ज्ञानपूर्ण परामर्श को मानता है, तो वह तीनों लोकों में कुछ भी प्राप्त कर सकता है। जैसा राजा, वैसी प्रजा। जिन्हें अध्यात्म-ज्ञान है, समदृष्टि है, शास्त्रों का ज्ञान है तथा जो भले और उदार हृदय हैं, वे ही राजा और मन्त्री होने योग्य हैं। मैं आपसे तत्त्व-ज्ञान पर कुछ प्रश्न करती हूँ। यदि आप उत्तर देने में समर्थ हों, तो आप पुष्पों की भाँति मेरे मस्तक पर स्थान भी लोगे, अन्यथा मेरे शिकार बनोगे और मुझे अच्छा भोजन मिलेगा। मेरे उदर में जो अग्नि धधक रही है, तुम उसके लिए ईंधन का काम करोगे।'

"राजा बोला-'हे कर्कटी! अब तुम प्रश्न करो, मैं भली प्रकार उनके उत्तर दूँगा।'"

वसिष्ठ जी बोले- "हे कमलनेत्र राम! राक्षसी द्वारा किये गये प्रश्नों को ध्यानपूर्वक सुनो। वे हैं :

'(१) अणु क्या है जो समुद्र की सतह पर उठने वाले अनेक बुलबुलों की भाँति उत्पन्न होने वाली असंख्य सृष्टियों के उत्पत्ति, पालन और विनाश का कारण है?
(२) वह क्या है जो आकाश है और फिर भी नहीं है?
(३) वह क्या है जो असीम होते हुए भी सीमायुक्त है?
(४) वह क्या है जो हिलता हुआ है, फिर भी नहीं हिलता?
(५) वह क्या है जो यद्यपि सत्तावान् है, फिर भी नहीं है?
(६) वह क्या है जो चेतना रूप में अभिव्यक्त है, फिर भी एक पत्थर के समान जड़ है?
(७) वह क्या है जो आकाश में चित्र अंकित करता है?
(८) वह क्या अणु है जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड इस प्रकार निहित है जैसे बीज में वृक्ष निहित है?
(९) समुद्र में झाग की भाँति सारी वस्तुएँ कहाँ से जन्म लेती हैं। (
१०) वे कहाँ विलीन हो जायेंगी?'

"मन्त्री ने उत्तर दिया- 'हे श्यामवर्ण स्त्री, सुनो।' और, निम्नांकित उत्तर दिये :

उत्तर १ : ' 'तुम्हारे सारे प्रश्न परम, अद्वैत ब्रह्म से सम्बन्धित हैं जो मन तथा पाँच इन्द्रियों की पहुँच से परे है और जो आकाश से भी अधिक सूक्ष्म है। वह अणुओं का अणु है। वह शुद्ध चैतन्य है। वह असीम ज्ञान है।

उत्तर २ : "ब्रह्म अथवा परम सत्ता सर्वव्यापक और सूक्ष्म है। वह निरालम्ब है। न इसका अन्तर है न

बाहर। अतएव ब्रह्म को ही आकाश कहा जा सकता है। परन्तु यह अति तुच्छ तुलना है। ब्रह्म की तुलना ब्रह्म से ही हो सकती है। परन्तु फिर भी वह आकाश नहीं है, क्योंकि वह शुद्ध चैतन्य अथवा ज्ञान है। आकाश जड़ है। यह माया से उत्पन्न है।

उत्तर ३ : " 'ब्रह्म अपनी ही महिमा से प्रकाशमान है। उसका कोई आधार नहीं है। वह देश, काल और कारण से परे है। वह सर्वव्यापक है। वह अविभाज्य और अनन्त है। उसका कोई निवास स्थान नहीं है। अतः वह सीमित नहीं है। फिर भी सारे प्राणियों में वह उनकी अन्तरात्मा अथवा पूर्ण सत् के रूप में सदैव विद्यमान है।

उत्तर ४ : " 'ब्रह्म अचल है, क्योंकि उसकी गतिशीलता के लिए बाहर स्थान नहीं है। वह परिपूर्ण है। वह शरीर और अनेक पदार्थों से सम्बन्ध के द्वारा गतिमान है।

उत्तर ५ : " 'ब्रह्म पूर्ण सत् अथवा शुद्ध अस्तित्व है। केवल ब्रह्म का ही अस्तित्व है। अतएव वह है। वह नेत्रों से नहीं देखा जा सकता। सांसारिक वृत्ति वाले लोग उसके अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। तुम यह संकेत कर यह नहीं कह सकते कि 'यह ब्रह्म है।' इसलिए वह नहीं है।

उत्तर ६ : " 'ब्रह्म शुद्ध चैतन्य है। वह स्वयं प्रकाशमान है। वह ज्योतियों की ज्योति है। ब्रह्म स्वयं ही पत्थर, पृथ्वी, लोहा और अन्य जड़ पदार्थों के रूप में प्रकट होता है। उसके दो पक्ष हैं-चैतन्य और पदार्थ। पदार्थ जड़ है। आत्मा शुद्ध चैतन्य है।

उत्तर ७ : " 'चिदाकाश, जो अति-सूक्ष्म है, स्वयम्भू और निष्कलंक है, उस पर सृष्टि के अनेक चित्रों को चित्रित करने वाला वही है।

उत्तर ८, ९ और १० : " 'विविध संसार ब्रह्म से ही प्रकट हुए हैं। वे ब्रह्म में स्थित हैं और अन्त में ब्रह्म में ही विलीन हो जाते हैं, जिस प्रकार बुलबुले सागर में विलीन हो जाते हैं। विविध संसार ब्रह्म से अभिन्न हैं। वे ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। वे ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति हैं।'

"कर्कटी मन्त्री द्वारा दिये हुए बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तरों से सन्तुष्ट हो गयी। फिर उसने राजा से कहा कि वह उसके प्रश्नों के उत्तर दे। वह उसके ज्ञान की गहराई को भी मापना चाहती थी।

"राजा ने कहा- 'केवल ब्रह्म का ही अस्तित्व है। यह विविध रूपी ब्रह्माण्ड वस्तुतः है ही नहीं। संकल्प मात्र से विश्व का अस्तित्व है। यदि संकल्पों को पूर्णतया नष्ट कर दिया जाये, तो संसार विलीन हो जायेगा। संकल्प ही इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करते हैं। सांसारिकता के बन्धन और समस्त सहगामी दोषों सहित हमारे बारम्बार जन्मों का कारण अज्ञानता है।

" "हे कर्कटी! तुमने अपने प्रश्नों में केवल ब्रह्म का उल्लेख किया है, जो स्वयं इस सृष्टि के रूप में अभिव्यक्त है और फिर भी अद्वैत, अविभाज्य, अनन्त, सर्वव्यापक और स्वयं-प्रकाशी है। जीवन्मुक्त महात्मा इस परम सत्ता अथवा सत्य का दर्शन करते हैं भूत, वर्तमान और भविष्य में जिसका अस्तित्व है। परब्रह्म सत्त्व अर्थात् सत्ता वाला है। सत् (अस्तित्व) और असत् (अनस्तित्व) के मध्य उसका स्थान है। सृष्टि के प्रलय के पश्चात् भी ब्रह्म रहता है। संकल्पों और विकल्पों का नाश करके शुद्ध मनस से ब्रह्म का साक्षात्कार करना चाहिए। यह अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान है। आत्मज्ञान-विषयक ग्रन्थों के अध्ययन से ब्रह्म का केवल परोक्ष ज्ञान हो सकता है। यह परोक्ष ब्रह्मज्ञान है।'

"राजा के बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर सुन कर कर्कटी अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह बोली-'तुम और तुम्हारा मन्त्री यथार्थ में सन्त हो। तुम निश्चय ही इस संसार में सम्मान के पात्र हो। तुम दोनों ज्ञानसूर्य रूप से प्रकाशमान हो। तुम्हारे ज्ञानमय शब्दों ने मुझ पर अमृत-जैसा प्रभाव डाला है। मेरा शरीर शीतल और शान्त हो गया है। ज्ञानी जनों के सम्पर्क में आने वाले वास्तव में बड़े पुण्यवान् हैं। सभी को तुम्हारे चरणों को मस्तक पर धारण करना चाहिए। हे राजन् ! मुझे आज्ञा दो कि मैं किस प्रकार तुम्हारी सेवा करूँ।'

"राजा बोला- 'हे कर्कटी! तुम भविष्य में अपने भोजन के लिए मनुष्यों को मत मारो। कभी किसी जीवित प्राणी को कष्ट मत पहुँचाओ।'

"कर्कटी बोली-'अच्छा, मैं वचन देती हूँ भगवन्! अब से मैं कभी किसी को नहीं मारूँगी।'

"राजा ने कहा- 'यदि ऐसा हो जाये, तो जानवरों का मांस भक्षण करने वाली तुम प्राणियों से प्राप्त भोजन का त्याग कर अपनी उदर-पूर्ति कैसे करोगी?'

"कर्कटी ने उत्तर दिया- 'मैं फिर पर्वत की चोटी पर जा कर दीर्घ काल तक निर्विकल्प समाधि में रहूँगी। मैं अन्तः प्रवाहित अमृत का पान करूँगी और अन्त में देह त्याग कर विदेह-मुक्ति प्राप्त करूँगी। हे राजन्! मैं जीवन के अन्त तक किसी जीवित प्राणी को नहीं मारूँगी और न ही कष्ट पहुँचाऊँगी। तुम मेरे शब्दों पर विश्वास करके निश्चिन्त हो जाओ।'

"राजा बोला- 'हे कर्कटी! कृपया हमारे साथ चल कर हमारे महल में वास करो। हम तुम्हें प्रचुरता से डाकू, लुटेरे और दुष्टों के शरीर देंगे जो भीषण अपराध करते हैं। इन दुष्ट जनों के शानदार या भव्य भोजन से अपने उदर की क्षुधा-अनि शान्त करके तुम अपना ध्यानाभ्यास कर सकती हो।'

"कर्कटी सहमत हो गयी। लक्ष्मी का शोभनीय रूप धारण करके राजा और मन्त्री के साथ उनके स्वर्णिम राजभवन चली गयी। राजा ने छह दिन में तीन हजार दुष्टों को एकत्रित करके, कर्कटी के पास उसके भोजन के लिए पहुँचा दिया। उसने कर्कटी का रूप धारण किया और तीन हजार दुष्टों को अपने कन्धों पर लाद लिया। फिर वह राजा और उसके मन्त्री से विदा ले कर हिमालय पर चली गयी। भोजन से तृप्त हो कर, कुछ देर विश्राम किया और फिर वह समाधि में प्रवेश कर गयी। वह चार-पाँच या कभी-कभी सात वर्ष बाद समाधि से जागती थी। फिर वह राजा के दरबार में जा कर राजा और मन्त्री के साथ सत्संग करती और फिर सदा की भाँति दुष्टों का शिकार कर वापस हिमालय में अपने स्थान पर लौट आती थी। आज तक राजा और कर्कटी परस्पर मित्र हैं।"

श्री वसिष्ठ जी ने उच्चाशय राम से ऐसा कहा।

इन्द्र और अहल्या की कथा

वसिष्ठ जी बोले-"हे कमलनेत्र राम! मन आत्मा का हनन करने वाला है। मन ही विश्व को उत्पन्न करता है। मन के कृत्य वास्तविक कर्म हैं; शरीर के कर्म कोई कर्म नहीं माने जाते । ब्रह्म ही मन की आश्चर्यजनक शक्तियों को समझ सकता है। यह शरीर मन के द्वारा अपनी क्रियाओं की सिद्धि के लिए तैयार किया हुआ साँचा है। मन शरीर के विषय में चिन्तन करके स्वयं शरीर ही बन जाता है। फिर वह इस शरीर में उलझ कर, इसके माध्यम से विभिन्न प्रकार के कष्ट और परेशानियाँ सहता है। जो सन्त सर्वव्यापी आत्मा से एकरूप हो जाता है और जो अपने शरीर

को शरीर रहित समझ लेता है, वह शरीर से संलग्न समस्त दोषों से मुक्त हो जाता है। इन्द्र और अहल्या को शारीरिक कष्ट की चेतना नहीं थी।"

राम बोले- "हे पूज्य गुरु! यह इन्द्र कौन थे और अहल्या कौन थी? मैं उनके विषय में सुनने को अति-उत्सुक हूँ।"

वसिष्ठ जी ने कहा -"प्राचीन काल में मगध (बिहार) में इन्द्रद्युम्न नाम का एक राजा राज्य करता था। उसकी अहल्या नाम की पत्नी थी। उस नगर में एक व्यक्ति था जो इन्द्र नाम से जाना जाता था। वह दुराचारी लोगों के एक समूह का नेता था। रानी इस इन्द्र के प्रति अति-आसक्त थी और कुछ दिन उसके साथ रही। यह बात राजा को बतायी गयी। राजा अति-क्रुद्ध हुआ। उसने शीत काल के मध्य में उन दोनों को शीतल जल के तालाब में डलवा दिया; किन्तु उन्होंने किंचित् भी कष्ट की अभिव्यक्ति नहीं की। वे परस्पर हँसते रहे मानो आनन्दपूर्ण मनोरंजन में रत हों।

"फिर उन्हें अग्नि पर रखे हुए बड़े कड़ाहे में फेंक दिया गया। उन्हें कुछ नहीं हुआ और कहने लगे - 'हे राजन्! हम एक-दूसरे का चिन्तन करते हुए अपने आत्मानन्द में मग्न हैं।'

"उन्हें हाथियों से कुचलवाया गया, परन्तु उन पर कोई असर नहीं हुआ और वे बोले कि हे राजन्! हम एक-दूसरे का स्मरण करते हुए आनन्दित हैं।

"फिर उन्हें शलाकाओं और कोड़ों से बुरी तरह पीटा गया। उन्हें हथौड़ों से पीटा गया। तब भी उन्होंने किंचित् पीड़ा के चिह्न प्रदर्शित नहीं किये। वे मुस्कराते और हँसते रहे।

"राजा आश्चर्यचकित हो गया। उसने इन्द्र और अहल्या से पूछा- 'क्या बात है कि कष्ट दिने जाने पर तुम दोनों को कष्ट की अनुभूति नहीं होती।'

"उन्होंने निम्नांकित उत्तर दिया- 'हे राजन्! कोई भी कष्ट हमें एक-दूसरे से अलग नहीं कर सकता। हमारे लिए यह विश्व एक-दूसरे के स्वरूप से परिपूर्ण है। हम अखिल विश्व को अपने से ही पूर्ण देखते हैं। हम प्रत्येक आकार और स्वरूप में अपने प्रियतम का ही दर्शन करते हैं। मैं उसके चेहरे को देखता हूँ और वह मेरे को देखती है। हम आनन्द में मग्न हैं, अतः हमें शरीर की चेतना नहीं है। हमें कष्ट की अनुभूति नहीं होती है। यदि शरीर के टुकड़े-टुकड़े भी हो जायें, तो हमें नाम मात्र का भी कष्ट नहीं होगा। जब मन किसी पदार्थ के साथ प्रबलता से संलग्न हो, तो उसे कष्ट की अनुभूति नहीं होती। जब मन किसी पदार्थ में पूर्णतया तल्लीन हो जाये, तो शरीर के कष्ट को देखने वाला और अनुभव करने वाला कौन है? केवल मन ही तो कष्ट की अनुभूति का यन्त्र है। यह मन अब उस पदार्थ में पूर्णरूपेण संलग्न है, रमा हुआ है जिसे यह सर्वाधिक चाहता है। उसे पीड़ा कैसे स्पर्श कर सकती है? पृथ्वी पर कोई शक्ति मन को उसके प्रिय पदार्थ से अलग नहीं कर सकती। ये सारे शरीर मन से ही उत्पन्न होते हैं। मन ही सब-कुछ करता है। वह सर्वोच्च शरीर है। यदि यह शरीर नष्ट हो जाता है, तो मन तुरन्त अपने मनचाहे शरीर को धारण कर लेगा। यदि मन आत्मज्ञान के फलस्वरूप नष्ट हो जाये और उसके पुनर्जीवन की सम्भावना न हो, तभी शरीरों की उत्पत्ति होनी रुकेगी।'

"राजा ने उनके वचनों के सत्य को समझा। दरबार में राजा के पास बैठे हुए मुनि भरत कहने लगे-'यह दम्पति यद्यपि वासना के वशीभूत थे, फिर भी इन्होंने ज्ञान के शब्द कहे हैं।' राजा ने उन्हें अपने राज्य से बाहर दूसरे राज्य में भेज दिया, जिससे वे स्वतन्त्रतापूर्वक आनन्द उठा सकें।

"विभिन्न अंगों सहित शरीर मन के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह सृष्टि भी मन के सिवाय और कुछ नहीं है। यदि मन नष्ट हो जाये, तो शरीर और सृष्टि दोनों विलीन हो जायेंगे।"

इस प्रकार महात्मा वसिष्ठ जी ने कथा का उपसंहार किया।

बालक के लिए एक कथा

वसिष्ठ जी बोले- "हे साहसी राम! सन्त का चित्त ब्रह्म से भिन्न नहीं है। एक अज्ञानी का चित्त उसकी अज्ञानता और भूल का कारण है। ब्रह्म में अनन्त शक्तियाँ हैं, जैसे इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति, ज्ञान-शक्ति, भूमा-शक्ति और अकर्ता-शक्ति आदि। परम ब्रह्म पूर्ण और अक्षुण्ण है। उसकी विचलन-राक्ति वायु में विद्यमान है; कठोरता की शक्ति पत्थर में; उष्णता की अग्नि में; शून्यता की आकाश में और सरलता की जल में। उसका आनन्द पवित्र आत्माओं के हृदयों में अनुभव होता है; उसकी वीरता योगियों में दृश्यमान है; उसकी रचना-शक्ति उसकी सृष्टि के कृत्यों में और उसकी संहार-शक्ति महान् कल्प के अन्त में सृष्टि के प्रलय में दृश्यमान होती है। जिस प्रकार बीज में वृक्ष निहित होता है, उसी प्रकार ब्रह्म में प्रत्येक वस्तु है। ब्रह्म एक है। वह अपनी माया से अनेक रूपों में अभिव्यक्त है। विचारणा से ब्रह्म स्वयं मन के रूप में प्रकट होता है, उपाधि अथवा अविद्या के सीमित रूप से जीवात्मा अर्थात् वैयक्तिक आत्मा रूप में प्रकट है, माया की उपाधि से ईश्वर रूप में और विक्षेप-शक्ति अथवा रचना-शक्ति से ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकट होता है।

"बन्धन और मुक्ति अज्ञानी के विचार हैं। आत्मा के बन्धन की बात करना ठीक नहीं है, क्योंकि वह सदा मुक्त है। आत्मा के मोक्ष की खोज व्यर्थ है, जो सदैव मुक्ति प्राप्त है। अज्ञानता के दलदल में फँसे सांसारिक मनुष्य के लिए यह संसार उतना ही सत्य है जितना कि माँ के द्वारा अपने छोटे बालक को सुनायी हुई बूढ़ी दादी की काल्पनिक कहानी।"

राम ने कहा- "हे पूज्य गुरुदेव ! कृपया वह कहानी मुझे बतलायें। मैं सुनने को उत्सुक हूँ।"

तब वसिष्ठ जी ने कथा वर्णन की- "एक बालक ने एक बार अपनी माँ से कुछ मनोरंजक कहानी सुनाने को कहा, तब माँ ने निम्नांकित काल्पनिक कथा वर्णन की :

'एक बार एक शून्य नामक नगर में तीन राजकुमार रहते थे। वे बहुत भले, गुणवान् और वीर थे। इन तीन में से दो कभी उत्पन्न नहीं हुए और तीसरे ने गर्भित होने के लिए कभी गर्भ में प्रवेश नहीं किया। उन्होंने यात्रा के लिए प्रस्थान किया और आकाश के उद्यान में विश्राम किया। उन्होंने कई प्रकार के फल खाये और ऊपर की ओर अपनी यात्रा पुनः प्रारम्भ की। दूर तक चलने के पश्चात् वे तीन नदियों के संगम पर पहुँचे जो तीव्र गति से प्रवाहित थीं और उनमें लहरें उठ रही थीं। इन तीन नदियों में से दो में जल नहीं था और तीसरी नदी में श्वेत रेत के सिवा कुछ नहीं था। उन्होंने अन्तिम नदी में स्नान किया और देर तक क्रीड़ा की और कुछ जल पिया जो दूध जैसा मधुर था। इस प्रकार उन्होंने अपनी आत्मा को प्रसन्न किया। इसके बाद उन्होंने अपनी यात्रा आरम्भ की और सूर्यास्त तक एक ऐसे नगर में पहुँचे जिसका अस्तित्व नहीं था और वहाँ उन्होंने तीन मकान बनाये। एक मकान की नींव नहीं थी, दूसरे की दीवारें नहीं थीं और तीसरे में न छत थी और न दीवारें। तीनों राजकुमार इन तीन सुन्दर मकानों, जो आकाश में अदृश्य नगर में बने हुए थे, में बड़े आराम से रहे। उन्हें अपने मकानों में तीन बर्तन मिले। प्रथम दो उठाने से चूर-चूर हो गये और तीसरा छूते ही मिट्टी हो गया। उन्होंने इन बर्तनों में बारह में से आठ कम करके नाप कर चावल रखे और उन्हें बिना जल और अग्नि में आश्चर्यजनक विधि से पकाया। उन्होंने वह भोजन असंख्य बिना

मुँह वाले, बिना जीभ वाले और बिना दाँतों वाले ब्राह्मणों को परोसा। तीनों राजकुमारों ने शेष भोजन को अति-प्रसन्न हो कर खाया। सन्ध्या-काल में वे लोग आखेट के लिए निकले और आनन्दपूर्वक समय बिताया।'

"माँ ने जब कहानी समाप्त की, तो बालक ने जो कुछ सुना उस पर अति-हर्षित हुआ। उसने समझा कि कहानी बिलकुल सच्ची थी।

"इसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य जिनमें न विवेक है न आत्म-विचार, वे इस संसार को यथार्थ समझते हैं। यह विश्व-रूपी हवाई किला, जिसे यथार्थ माना जाता है, बालक को सुनायी हुई कहानी जैसा है जो बालक की माँ की कल्पना से गढ़ी हुई है। माँ ने हवा में 'अस्तित्वहीन' को नाम तथा रूप दे दिया था। इसी प्रकार इस मिथ्या संसार के भ्रामक पदार्थों को मन ने नाम और रूप दे दिया है। यह ब्रह्माण्ड संकल्पों की प्रकृति के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मन ही इस विश्व को जन्म देता है। तुम्हारी कल्पना की उत्पत्ति के सिवाय वास्तव में किसी का अस्तित्व नहीं है। कल्पना ही सारे विचित्र मनगढ़न्त रूप बनाती है। स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, वायु, नदियाँ, पर्वत, वृक्ष आदि सब स्वप्न के दृश्यों की भाँति तुम्हारे संकल्प अथवा कल्पना की उपज हैं। कल्पना 'वायवीय निरस्तित्व' को आकार दे देती है। मन का विस्तार ही संकल्प है और संकल्प अपनी भेद शक्ति द्वारा इस विश्व को जन्म देता है। अखिल सृष्टि संकल्प का ताना-बाना है। संकल्प मन की सर्वाधिक क्रियाशील शक्ति है। अतएव, हे राम! सारे संकल्पों को त्याग कर निर्विकल्प स्थिति को प्राप्त करो, जहाँ कोई चित्त के रूपान्तर अथवा संकल्प नहीं रहते।

"हे राम! मिथ्या कल्पना से उत्पन्न दोषों के शिकार केवल अज्ञानी जन होते हैं। वे इस भ्रामक संसार को सत्य समझते हैं। वे अक्षुण्ण (नाश रहित) आत्मा में नाशवान् गुण आरोपित करते हैं। उनके चित्त सदा उनके संकल्पों अथवा विचारों के द्वारा चलायमान रहते हैं। वे अपने-आपको अपने शरीरों से एकरूप कर लेते हैं। परन्तु सन्त जन इन त्रुटिपूर्ण धारणाओं और दोषों से बिलकुल मुक्त रहते हैं। उनके लिए यह विश्व मृगमरीचिका के समान है। वे सदा अपने को अमर आत्मा से एकाकार करते हैं।

"हे राम! तुम विश्व की यथार्थता के विषय में अपने त्रुटिपूर्ण विचार को त्याग दो। जो-कुछ मिथ्या और असत्य है, उसको त्याग दो। ब्रह्म अथवा अमर, सर्वव्यापक आत्मा, जो सबका यथार्थ आधार और आश्रय है, वही एकमात्र सत्य है। सत्य की प्रकृति का अन्वेषण करो। तुम कभी बद्ध नहीं हो। तुम सदा मुक्त हो। जब केवल ब्रह्म ही सत्य है, तो जीव कहाँ रहा ? कौन बद्ध है? कौन मोक्ष प्राप्त करता है? बन्धन और मुक्ति सब मन की मिथ्या कल्पना है।

"नाशवान् शरीर का अमर आत्मा से सम्बन्ध बर्तन और उसमें समाये आकाश के समान है। अयथार्थ संसार हमें यथार्थ प्रतीत होता है और सृष्टि की कल्पित अवधि हमारी निद्रा में दीर्घ स्वप्न के समान है। यह विश्व एक दीर्घ स्वप्न है। यह संसार विशाल जंगल है। यह रोग और मृत्यु-रूपी सर्पों से आच्छादित है। मन इस जंगल का स्वामी है। यह हमें सब प्रकार के संकटों और कठिनाइयों में डाल देता है। विश्व का विचार ही इसके अस्तित्व का कारण है। हे राम ! विचार, बुद्धि और विवेक द्वारा तुम अपने चित्त से इस संसार का नाश करो। अपनी चंचल कामनाओं द्वारा चित्त तुम्हें कष्ट और मृत्यु में फँसा देता है।

"मन की लगाम ढीली मत करो। निर्दयता से उसे दबाये रखो। इसका निरोध और नाश कर दो। तुम शीघ्र ही सत्य को पहचान कर अन्तिम मोक्ष प्राप्त करोगे। फिर सारे कष्ट, दुःख और भ्रान्तियों का अन्त हो जायेगा।"

एक सिद्ध की कथा

वसिष्ठ जी बोले-"मन का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं होता। जिस प्रकार लहरें सागर के जल पर निर्भर हैं, उसी प्रकार मन परमात्मा पर निर्भर है। मन सदा परिवर्तित होता रहता है। यह मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र मान लेता है। महान् को निम्न स्तर पर ले आता है और निम्न को ऊँचा उठा देता है। कभी इसमें कोई भावना अथवा दशा होती है और कभी अन्य कोई भावना अथवा दशा। यह सत्य को असत्य मान लेता है और असत्य को सत्य। सुख-दुःख, हर्ष-शोक, आनन्द और कष्टये सब मन की ही उपज हैं। शुभ-अशुभ कर्मों का फल मन ही भोगता है। मन के बिना पदार्थ का ज्ञान नहीं हो सकता। समस्त भावनाओं का कारण मन ही है। तुम केवल मन के द्वारा ही सुनते हो, अनुभव करते, देखते, स्वाद लेते और सूंघते हो। मन ही इस शरीर को गतिमान करता है। समय, दूरी, स्थान; लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई; तीव्रता, धीमापन, महानता और लघुता; बहुत अधिक अथवा बहुत कम; काला अथवा लालपन-ये सब मन में ही उत्पन्न होते हैं। ये सब मन से ही सम्बन्धित हैं।

“पदार्थों के विचार बन्धन में डालते हैं। विचारों का त्याग मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। यह ब्रह्माण्ड विचारों के विस्तार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह विश्व एक विशाल प्रदर्शन है। यह प्रदर्शन मन के द्वारा संचालित है। जिस प्रकार ऋतुओं से वृक्षों में परिवर्तन आता है, उसी प्रकार मन से मानव-प्रकृति में परिवर्तन आता है। विश्व में जितने मनुष्य हैं, उतने ही मन हैं। एक मन के दो व्यक्ति मिलना कठिन है।

"मन पदार्थों में क्रीड़ा करता है। यह भ्रम पैदा करता है। मन के खेल से समीपता दूरी प्रतीत होती है और दूरी समीपता लगती है। कल्प एक क्षण जैसा लगता है और क्षण कल्प जैसा। इस विचार को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने के लिए मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ। हे राम! पूरे ध्यान से सुनो।

"हरिश्चन्द्र की परम्परा का एक राजा लवण उत्तरपाण्डव नामक देश में राज्य करता था। वह एक महिमाशाली और गुणी राजा था। एक बार वह गद्दी पर बैठा था। उसके सब मन्त्री और अधिकारी गण विद्यमान थे। इस समय एक सिद्ध अर्थात् जादूगर वहाँ आया। राजा को प्रणाम करके वह - हे मेरे स्वामी! मेरे आश्चर्यजनक चमत्कारों को देखने की कृपा करें।'

"सिद्ध ने अपना मोर पंखों का गुच्छा घुमाया। राजा को निम्नांकित अनुभव हुए :

"सिन्धु के राजा के एक दूत ने इन्द्र के घोड़े जैसे घोड़े सहित दरबार में प्रवेश किया और बोला- 'हे महाराज! हमारे राजा ने आपके लिए यह घोड़ा भेंट में भेजा है।'

"सिद्ध ने राजा से अनुरोध किया कि वह उस घोड़े पर बैठे और आनन्दपूर्वक उसकी सवारी करे। राजा ने घोड़े पर दृष्टि डाली और दो घण्टे तक मूर्छा में रहा। तत्पश्चात्, उसका कठोर शरीर ढीला होता गया हुआ प्रतीत हुआ। थोड़ी देर बाद वह भूमि पर गिर गया। दरबारियों ने शरीर को उठाया। फिर राजा अपनी सामान्य स्थिति में आ गया।

"मन्त्री गण और दरबारी लोग घबरा गये और वे राजा से पूछने लगे- 'महाराज! आपको क्या हुआ है?'

"राजा बोला- 'सिद्ध ने अपना मोर पंख का गुच्छा घुमाया। मुझे अपने सामने घोड़ा दिखायी दिया। मैं उस पर चढ़ गया और तेज धूप में रेगिस्तान में चला गया। मेरा कण्ठ सूख गया। मैं बहुत थका हुआ था। फिर मैं एक सुन्दर जंगल में पहुँचा। मैं जब घोड़े पर चढ़ा हुआ था, तो एक लता मेरी गर्दन में लिपट गयी और घोड़ा भाग गया। रात-भर गले में लता लिपटे हुआ मैं हवा में लटका रहा। मैं अत्यधिक सर्दी से ठिठुर रहा था।

" 'दिन निकल आया और सूर्य दिखायी दिया। तब मैंने गर्दन में लिपटी हुई लता को काट डाला। फिर मैंने एक अछूत कन्या को हाथ में कुछ भोजन और जल ले कर जाते हुए देखा। मैं अत्यन्त भूखा था और उससे खाने के लिए कुछ माँगा। उसने मुझे कुछ नहीं दिया। मैं देर तक उसका पीछा करता रहा। तब उसने घूम कर मेरी ओर देखा और बोली- "मैं जन्म से चाण्डाल हूँ। यदि तुम मेरे स्थान पर, मेरे माता-पिता के समक्ष मुझसे विवाह करके मेरे साथ वहाँ रहने का वायदा करो, तो जो-कुछ मेरे हाथ में है, इसी क्षण तुम्हें दे दूँगी।" मैंने उससे विवाह करना स्वीकार कर लिया। तब उसने मुझे आधा भोजन दे दिया। मैंने भोजन कर जामुन फल का रस पी लिया।

'तब वह मुझे अपने पिता के पास ले गयी और मुझसे विवाह करने की अनुमति माँगी। उसने स्वीकार कर लिया। वह मुझे अपने निवास स्थान पर ले गयी। उसके पिता ने मांस-प्राप्ति के लिए बन्दर, कौवे, सुअरों को मार कर, उनकी नसों की डोरियों पर सुखाया। एक छोटा मण्डप बनाया गया। मैं एक बड़े केले के पत्ते पर बैठ गया। मेरी टेढ़ी आँख वाली सास ने मुझे रुधिराक्त गोलकों से देख कर कहा कि क्या यह हमारा जामाता होगा ?'

'विवाहोत्सव खूब धूमधाम से प्रारम्भ हुआ। मेरे श्वसुर ने मुझे वस्त्र और अन्य वस्तुएँ भेंट कीं। ताड़ी और मांस का वितरण किया गया। मांस खाने वाले चाण्डाल ढोल बजाने लगे। कन्या का पाणि-ग्रहण संस्कार हो गया। मेरा नया नाम 'पुष्ट' रखा गया। सात दिन तक विदाहोत्सव की धूम रही। इस विवाह से, पहले एक कन्या उत्पन्न हुई। तीन साल में फिर एक काला लड़का उत्पन्न हुआ। फिर एक कन्या हुई। मैं एक बृहत् परिवार वाला बूढ़ा चाण्डाल हो गया और दीर्घ काल तक रहा। सन्तान दुःख का कारण होती हैं। मनुष्य की वासना के फलस्वरूप होने वाली विपत्तियाँ सन्तान का रूप धारण करती हैं। परिवार की चिन्ताओं एवं परेशानियों के कारण मेरा शरीर वृद्ध और जर्जर हो गया। मुझे उस बीहड़ जंगल में गर्मी सर्दी सहनी पड़ती थी। मैं पुराने व फटे चिथड़े वस्त्र पहनता था। अपने सिर पर लकड़ियों का गट्ठर ले कर जाता था। मुझे अति शीत हवा सहन करनी पड़ती थी। जंगल में कन्द-मूल पर निर्वाह करना पड़ता था। मैंने अपने जीवन के साठ वर्ष इस प्रकार व्यतीत किये मानो वे दीर्घावधि के अनेक कल्प हों। फिर एक भयंकर अकाल पड़ा। बहुत से लोग भूख से मर गये। मेरे कुछ सम्बन्धियों ने वह स्थान छोड़ दिया।

'मेरी पत्नी और मैं वह देश छोड़ कर धूप में चल पड़े। मैंने दो बच्चों को कन्धों पर बिठाया और एक को सिर पर बिठाया। बहुत दूर चलने के पश्चात् मैं एक जंगल के किनारे पहुँचा। हम सबने एक नारियल के पेड़ के नीचे थोड़ा विश्राम किया। धूप में लम्बी यात्रा करने के कारण मेरी स्त्री का निधन हो गया। मेरा छोटा पुत्र, प्राचेक आँखों में आँसू भर कर बोला- "पिता जी! मैं भूखा हूँ, मुझे तुरन्त कुछ मांस और पेय दो, अन्यथा मैं मर जाऊँगा।" वह बारम्बार मुझे अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहता रहा कि वह क्षुधा से मर रहा था। मैं पितृ-वात्सल्य से द्रवित हो गया। मेरे हृदय को अत्यधिक पीड़ा पहुँची थी। वह कष्ट सहने में असमर्थ हो कर, मैंने अग्नि में कूद कर अपने जीवन का अन्त करने का निश्चय कर लिया। मैंने कुछ लकड़ी इकट्ठी करके ढेर लगा लिया और उसमें आग लगा दी। ज्यों-ही मैं अग्नि में कूदने को खड़ा हुआ, तो अपने सिंहासन से गिर गया। संगीत-वाद्यों का शब्द सुना और आप लोगों को मुझे इस घोष के साथ उठाते हुए पाया-'जय हो! जय हो!' अब मैं अपने को राजा लवण के रूप में देख रहा हूँ, चाण्डाल नहीं। अब मेरी समझ में आया कि उस सिद्ध ने मुझे इतने काल तक काल्पनिक विपत्तियों में डाला था।'

"मन्त्रियों ने सिद्ध का पूर्व-विवरण पूछा। इसी बीच में यह विदित हुआ कि शम्बरीक नामक वह सिद्ध अदृश्य हो चुका था।"

वसिष्ठ जी ने तब समझाया- "हे राम ! यह सिद्ध दिव्य माया के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस कथा से यह भली प्रकार स्पष्ट होता है कि यह ब्रह्माण्ड मन के सिवाय कुछ नहीं है। परब्रह्म ही मन और संसार के रूप में प्रकट होता है। जो कुछ तुम देखते हो, वह चित्त की ही अभिव्यक्ति है। समय केवल मन का एक ढंग है। स्वप्न में तुम पाँच मिनट में एक शताब्दी की घटनाओं का अनुभव कर लेते हो। चित्त को एकाग्र करने पर एक घण्टा पाँच मिनट

के समान प्रतीत होता है। यदि चिज एकाग्र नहीं हो, तो दस मिनट तीन घण्टों के समान लगते हैं। इस संसार में सभी को इस प्रकार का अनुभव है। दो घण्टों के भीतर राजा लवण को साठ वर्ष का अनुभव हो गया।

"यह सृष्टि मन की उत्पत्ति है। मन अथवा माया सबसे बड़ा मायावी अथवा जादूगर है। मन अथवा माया इस कहानी का सिद्ध है। मन माया है। मन ही माया का अस्त्र है। राजा के अनुभव मनुष्यों की दुःखद अवस्था के प्रतीक हैं, जो कामनाओं और इच्छाओं के दास हैं और साथ ही संसार की स्थिति के भी परिचायक हैं। यह मिथ्या संसार सर्वशक्तिमान् परमात्मा की अनन्त शक्ति का प्रदर्शन है। इस विश्व में सारे प्राणी भ्रमित हुए विचरते हैं। वे अयथार्थ की यथार्थता में विश्वास करते हैं। जो सत्य है, वह उनके लिए असत्य है। जिस प्रकार वृक्ष अपनी शाखाओं एवं डालियों द्वारा फैलता जाता है, उसी प्रकार मन भी अपनी कल्पना के विभिन्न आविष्कारों से विस्तृत हो जाता है।

"यदि तुम मन के संकल्पों अथवा कल्पनाओं को नष्ट कर दो, यदि मन को पूर्णरूपेण अनुशासित कर लो, यदि विवेक विचार, वैराग्य और आत्मा पर नियमित ध्यान द्वारा मन पर पूर्ण नियन्त्रण कर लो, तो तुम पर माया का प्रभाव नहीं होगा। तुम अमरता प्राप्त करके अनन्तता के शाश्वत सुख का भोग करोगे।"

४.स्थिति-प्रकरण

स्थिति

वसिष्ठ जी राम से बोले- "हे वीर राम! मन ही सब-कुछ है। सारे कार्यों का कर्ता यह मन है। बाह्य संसार का निषेध और विचारों का निरोध मन-रूपी राक्षस पर नियन्त्रण करने में सहायक हो सकते हैं। विश्व इसी प्रकार

मन में रहता है जैसे सूर्य में उसकी किरणें। मन विश्वों का आधान है। मन वही है जो विश्व मन से एकरूप है। मन और संसार घनिष्ठता और अपृथक्करणीयता से परस्पर सम्बन्धित हैं। मन का खेल ही विश्व की उत्पत्ति करता है। चेतना के रूप में ही विश्व प्रकाशित होता है।

"निर्मल चिदाकाश पर बिना चित्रकार, चित्र-फलक, तूलिका अथवा किसी अन्य सामग्री के सृष्टि-रूपी चित्र चित्रित है। चित्र स्वतः ही प्रकट होता है। वह सदा स्वयं को देखता रहता है। जागृत अवस्था में विश्व एक दीर्घ स्वप्न के समान है। सर्वव्यापक, अविभाज्य, समरूप, पूर्ण, स्वयं-प्रकाशी ब्रह्म जो मौन साक्षी है, उसमें विश्व की छाया दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान है। यह विश्व ब्रह्म के द्वारा ही प्रकाशित है। ब्रह्म इस ब्रह्माण्ड का आधार है। कारण और परिणाम का सम्बन्ध नहीं है।

"शाश्वत, शुद्ध, सर्वव्यापी और पूर्ण ब्रह्म का ध्यान करो। शनैः-शनैः मन की सारी चंचलता समाप्त हो जायेगी। तुम परमात्मा के साथ एकरूप हो जाओगे।

शुक्र की कथा

"जिस प्रकार एक पत्थर पर कई चित्र उत्कीर्ण किये जा सकते हैं, उसी प्रकार एक ब्रह्म में बहु-रूपी संसार प्रकट है। ब्रह्म अद्वैत है। विश्व मिथ्या है। वह अपने अस्तित्व के लिए ब्रह्म पर निर्भर है। जो मिथ्या और परावलम्बी है, उसे अस्तित्ववान् नहीं कहा जा सकता। ब्रह्माण्ड कहलाने योग्य वस्तुतः कुछ नहीं है, क्योंकि द्वितीय का निर्माण करने के लिए ब्रह्म से सम्बन्धित कोई कारण या परिणाम नहीं है। केवल ब्रह्म ही है। ब्रह्माण्ड ब्रह्म में छाया के अतिरिक्त कुछ नहीं है। हे राम ! शुक्राचार्य की कथा ध्यानपूर्वक सुनो। तब मेरे कथन का सत्य तुम्हें स्पष्ट रूप से समझ आ जायेगा।

"मन्दार पर्वत पर एक समतल भूमि है, जो अनेक सुन्दर पुष्पों और वृक्षों से पूर्ण है। प्राचीन काल में यहाँ भृगु मुनि ने कठोर तपस्या की थी। उनका पुत्र शुक्र प्रतिभाशाली था। वह अति-सुन्दर भी था। वह अपने पिता से कभी अलग नहीं होता था। वह त्रिशंकु की भाँति एक मध्यम स्थिति में था। वह युवावस्था की क्रीड़ाएँ करता हुआ मन्दार के कुंजों में स्वतन्त्रतापूर्वक रमण करता था। कभी लड़के की तरह खेलता था। कभी अपने पिता की भाँति ध्यान में बैठ जाता था। उसके पिता सदैव निर्विकल्प समाधि में रहते थे।

"एक दिन जब वह इस प्रकार अपने पिता के पास बैठा था, शुक्र ने आकाश की ओर दृष्टि डाली, तो एक दिव्य स्त्री को अपने वायवीय विमान में आकाश पार करते हुए देखा। वह उस पर मुग्ध हो गया। उसने अपने मन की वृत्ति को नियन्त्रित किया; किन्तु मन अपने प्रिय पदार्थ के ध्यान में मग्न रहा। वह अपने नेत्र बन्द किये उस स्त्री के विषय में सोचता रहा और एक कल्पित साम्राज्य की दुनिया में डूब गया। उसने समझा कि अप्सरा इन्द्रलोक के लिए आकाश में उड़ रही थी। उसने अपने पार्थिव शरीर को त्याग कर स्वर्गिक देवताओं के आनन्दमय लोकों तक उसका अनुसरण किया।

"शुक्र ने अपने सामने इन्द्र को अपने स्थान इन्द्रलोक में बैठे हुए देखा। उसने इन्द्र को प्रणाम किया और उसने सम्मानपूर्वक सत्कार करके उसे अपने पास बिठाया। शुक्र ने उसी स्त्री को देखा, जो वायु-मार्ग से आयी थी। वह भी उसे प्रेम करती थी। फिर वे आनन्दपूर्वक रहने लगे। तब शुक्र इन्द्रलोक से नीचे आया। उतरते हुए उसका जीव चन्द्रमा की शीतल किरणों में मिल कर शीत बर्फ हो गया। यह बर्फ चावल के खेतों पर गिरा और चावलों में परिवर्तित हो गया। चावल पकाया गया और दशार्ण देश के एक ब्राह्मण ने उसे खाया। वह वीर्य में रूपान्तरित हो

गया। शुक्र जो ब्राह्मण के शुक्राणु-रूप में था, उसका पुत्र बन कर आया। तब वह तपस्वियों के संसर्ग में आया और उसने स्वयं भी मेरु पर्वत क्षेत्र के जंगल में दीर्घ काल तक तपस्या की। उसका एक पुत्र भी था। पुत्र में वह अति-आसक्त था। सांसारिक पदार्थों के प्रति आसक्ति के कारण उसका पतन हुआ। वासनाओं के कारण उसे अनेक जन्म लेने पड़े। अन्त में वह गंगा जी के किनारे एक मुनि का पुत्र हुआ।

"इस बीच में शुक्र का शरीर जो उसके पिता भृगु के पास पड़ा था, वह सूर्य की ऊष्मा और हवा के कारण अस्थि-पंजर मात्र रह गया था। पास में भृगु के रहने के कारण हिंस्र पशु और पक्षियों ने उसके शरीर को नहीं खाया।

"सहस्रों वर्ष पश्चात्, महान् भृगु अपनी निर्विकल्प समाधि से जागे। उन्होंने नेत्र खोले, तो अपने सामने अपने पुत्र के शरीर को अस्थि-पंजर के रूप में पड़ा हुआ देखा। वह अति-क्क्रुद्ध हो कर यम को श्राप देने लगे।

"यम भृगु को वास्तविक स्थिति बताने हेतु उनके समक्ष उपस्थित हुए और कहने लगे-'हे मुनि! मैं केवल ईश्वर के नियमों की अनुपालना कर रहा हूँ। मैं केवल ईश्वरीय इच्छा पूरी करता हूँ। कृपया क्रोध से अपनी तपस्या नष्ट मत करो। ईश्वरीय नियम अटल एवं कठोर है। ब्रह्म में न कर्म है, न भोग। वह सदा शुद्ध, कर्म रहित और परिवर्तन रहित है। परम तत्त्व के दृष्टिकोण से न तो कोई कर्ता है, न भोक्ता। केवल इस अज्ञानपूर्ण संसार में कर्ता, भोक्ता और कर्म हैं। सभी प्राणी संकल्पों से उत्पन्न होते हैं। वे अपने कर्मानुसार फल भोगते हैं। निश्चय ही आपका मुझे भला-बुरा कहना न्यायसंगत नहीं है। आपके पुत्र ने निज-संकल्प से यह स्थिति उत्पन्न की है। चित्त के कर्म ही यथार्थ कर्म हैं।

'बुराई की ओर प्रवृत्त यह अज्ञानी मन शरीर को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जैसे छोटे बच्चे खेल में अपनी मिट्टी की गुड़ियाएँ तोड़ डालते हैं। चित्त अपनी वासनाओं के द्वारा पृथ्वी से बँधता है और संसार के आकर्षणों एवं आशाओं से रहित हो कर मुक्त हो जाता है। जो इस प्रकार सोचता है- 'यह मेरी देह है, यह मेरा सिर है और ये मेरे शरीर के सदस्य (अंग) हैं', वह मन कहलाता है। संसार में अपने जीवन के द्वारा वह जीव कहलाता है। अपने संकल्प के द्वारा यह बुद्धि कहलाता है। जब क्रोध के चिह्नों सहित 'मैं'-'मेरा' के विचार उत्पन्न होते हैं, तो अहंकार कहलाता है। वही मन अपने विभिन्न क्रियाकलापों के अनुसार इन विभिन्न नामों से अभिहित होता है। यह मन ही अलग-अलग भेदों के विचार द्वारा ब्रह्माण्ड है। जब मन सत्य का प्रकाश प्राप्त करता है, तो यह प्रकाशवान् बुद्धि कहलाता है। जब आप और आपका पुत्र ध्यानस्थ थे, तब आपका पुत्र प्रबल कामना के वशीभूत हुआ, इस शरीर को त्याग कर दिव्य लोक को चला गया, जैसे कोई पक्षी अपना घोंसला छोड़ कर खुली हवा में चला जाता है। वह वहाँ एक विश्ववसु नामक दिव्य स्त्री के साथ रहा। वह देवलोक से चला गया। वहाँ के वातावरण ने निकल कर फिर दर्शार्ण प्रदेश में एक ब्राह्मण के पुत्र रूप में जन्म लिया। उसने पूर्ण जीवन-चक्र पार किया-कौशल राज्य के राजा के रूप में; एक विशाल जंगल में शिकारी; गंगा के तट पर हंस; सूर्यवंशी राजा; पुण्ड्रा का राजा और फिर शाल्व देश में सूर्यवंश का गुरु हुआ। एक कल्प की अवधि तक वह विद्याधरों का राजा हुआ; एक मुनि का कुशाग्र बुद्धि वाला पुत्र हुआ; सौरिवा देश में शासक; एक अन्य देश में वह शैव मत के अनुयायियों का गुरु हुआ; एक अन्य देश में बाँस का समूह; जंगल में एक हिरण; एक जंगल में अजगर; विन्ध्य पहाड़ियों में और कैकटव में शिकारी और त्रिगर्त में एक गर्दभ।"

'इस प्रकार विभिन्न गर्भों में होते हुए उसने अपनी वासना के प्रभाव से उच्च और नीच अनेक जन्म धारण किये। अन्त में यह गंगा तट पर एक ब्राह्मण ऋषि के पुत्र-रूप में वासुदेव नाम से पैदा हुआ। इस जन्म में उसने अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त किया। गत आठ सौ वर्षों से जटाएँ बाँधे हुए वह तप में लीन है। यदि आप अपने पुत्र के मिथ्या जन्मों की शृंखला जानना चाहते हैं, तो अपनी दिव्य दृष्टि से ऐसा कर सकते हो।'

"मुनि भृगु ने क्षण-भर में अपनी अन्तर्दृष्टि से अपने निर्मल चित्त के पारदर्शी दर्पण में प्रतिबिम्बित अपने पुत्र के सारे जन्मों की घटनाएँ देख लीं। पारदर्शी दर्पण जिसने स्वयं-प्रकाशी आत्मा से प्रकाश प्राप्त किया था। उन्होंने यम से कहा- 'कृपया मेरे पूर्व-दुर्व्यवहार को क्षमा करें। आप सर्वज्ञ हो। आप ही सर्वश्रेष्ठ विधाता हो। तीनों कालों के ज्ञाता आप ही हो। आप भूत और भविष्य के स्वामी हो।'

"तब यम भृगु को गंगा-तट पर ले गये, जहाँ वासुदेव तप-साधना कर रहा था। वासुदेव समाधि में था। यम ने चाहा कि वासुदेव समाधि से निकल उन्हें देखे । वासुदेव ने नेत्र खोले और अपने पूर्व-जन्म के पिता भृगु के साथ यम को खड़े हुए देखा। वासुदेव ने अपने स्थान से उठ कर उनका स्वागत किया। वे सब एक पत्थर की पट्टी पर बैठ गये।

"वासुदेव बोला- 'आज मैं आपकी उपस्थिति से धन्य हुआ। मैं पवित्र हो गया और अत्यधिक आनन्दित हूँ।'

"भृगु ने अपने पुत्र को आशीष दी - 'ईश्वर करे, तुम आत्मज्ञान प्राप्त करो! तुम अज्ञान से मुक्त होओ! तुम सदैव ब्रह्मानन्द का अनुभव करो!' "वासुदेव अर्थात् शुक्र ने नेत्र मूँदे और दिव्य दृष्टि से अपने समस्त पूर्व-जन्मों की घटनाएँ देख लीं। वह भावी जन्मों से मुक्त हो गया।

"अपने पूर्व-जन्मों का स्मरण करके वासुदेव आश्चर्यचकित हो गया। वह बोला- 'परम सत्ता का विधान धन्य है, जो आदि और अन्त से रहित है और जिसकी शक्ति से यह विश्व संचालित है। मैंने महान् कठिनाइयाँ सहन की हैं। मैं चिरकाल तक संसार-चक्र में फँसा रहा और मैंने देखने योग्य सब-कुछ देख लिया है। अब मैंने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है। मैं पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त हो गया हूँ। हे पिता! उठो, मन्दार पर्वत पर पड़े हुए शरीर को देखें जो एक मुरझाये हुए पौधे की भाँति सूख गया है।'

"वे तीनों मन्दार पहाड़ियों की ओर उस शरीर को देखने के लिए चल दिये। वासुदेव ने भृगु के पुत्र-रूप में अपने पूर्व-शरीर को देख कर कहा- 'हे पिता! यह निस्तेज देह है जिसका आपने विभिन्न प्रकार के पौष्टिक भोजन से पोषण किया था। यह मेरा वही शरीर है जो प्रेमपूर्वक चन्दन से अभिषित किया गया था। मनुष्य शाश्वत सुख तभी भोग सकता है, जब कि मन का विनाश हो जाये। केवल आत्मिक विचार ही मनुष्य को आत्मा की उपलब्धि करा सकता है। ब्रह्मज्ञान अथवा आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य आनन्द के सागर में डूब जाता है और इस भयंकर संसार के भीषण कष्टों से मुक्त हो जाता है।'

"यम बोले-'हे शुक्र! अब तुम वासुदेव के शरीर को त्याग कर अपने मृत शरीर (पूर्व-शरीर) में प्रवेश करो जैसे राजा अपने महल में प्रवेश करता है। असुरों के गुरु बन कर उन्हें समुचित उपदेश दो।' यम उनसे विदा ले कर अन्तर्धान हो गये।

"शुक्र ने वासुदेव के शरीर को त्याग कर यम भगवान् के निर्देशों के अनुसार अपने पूर्व-शरीर में प्रवेश कर लिया। जिस प्रकार नदियों की शुष्क सतह वर्षा ऋतु में जल-प्रवाह से परिपूर्ण हो जाती है, उसी प्रकार शरीर की समस्त शिराएँ, धमनियाँ, सभी कोशिकाएँ और रिक्त स्थान फिर से रुधिर से भर गये। शरीर के रुधिर से पूर्ण हो जाने के कारण सब अंग खिल गये जैसे झील में कमलों के समूह और हरे-भरे पौधे में नयी कोपलें और कलियाँ खिल उठती हैं। सारी देह में नाड़ियों ने प्राणों को स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने दिया। वृद्ध महात्मा भृगु ने अपने पुत्र के मृत शरीर को पुनः जीवित देख कर, शुद्धिकरण मन्त्र पढ़ कर, अपने कमण्डल का पवित्र जल छिड़क कर उसे पवित्र किया। तब शुक्र ने उठ कर अपने पिता को प्रणाम किया। तब पिता ने शुक्र का आलिंगन किया और उस पर प्रेमाश्रुओं की वर्षा की। दोनों पुनः मिलन पर आनन्दित हुए। देश व काल के परिवर्तनों के मध्य अपनी

समचित्तता एवं स्वभाव की स्थिरता को सुरक्षित रखते हुए पिता और पुत्र ने जीवन्मुक्त अवस्था में समय व्यतीत किया। कालान्तर में शुक्र ने असुरों का गुरुत्व प्राप्त किया और भृगु मानवों के पूज्य पैतृक पद पर रहे।"

इस प्रकार महात्मा वसिष्ठ जी ने कथा समाप्त की।

वसिष्ठ जी आगे बोले-"वेदान्त सम्बन्धी ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को अपने स्वाध्याय के फल की तुरन्त चाहना नहीं करनी चाहिए। उसे ब्रह्म अथवा अमर आत्मा पर नियमित रूप से ध्यानाभ्यास करना चाहिए। शनैः-शनैः चित्त-शुद्धि होगी तथा चित्त में दृढ़ता और स्थिरता आ जायेगी। अन्ततोगत्वा मन आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेगा।

"जो अपने स्त्री, पुत्रों, धन-सम्पत्ति और अन्य सांसारिक सम्पत्ति में आसक्ति रहता है, वह एक दुःखी मनुष्य है। वह आशाओं के सैकड़ों बन्धनों में बँधा रहता है। उसे चित्त की शान्ति नहीं रहती। विषयासक्त जीवन-यापन से उसे कोई लाभ नहीं होता। वह सत्य को असत्य समझता है और इस प्रकार वह अपना मार्ग तथा जीवन खो देता है। धन सारे दुःखों की जड़ है। धनोपार्जन करना कष्टदायक है। उसकी रक्षा करना और भी कष्टदायक है। धन खोना और अधिक कष्टदायक है। परन्तु उन मनुष्यों पर कष्ट का कोई प्रभाव नहीं होगा जो वैराग्य और विवेक से सम्पन्न हैं, जो संसार को तिनके के समान मान कर उसके सारे सम्बन्धों को इस प्रकार त्याग देते हैं जिस प्रकार सर्प अपनी कैचुली को।

"जो मनुष्य शुद्ध बुद्धि और स्पष्ट बोध-शक्ति से सम्पन्न हैं, जो स्वभावतः धर्मग्रन्थों के अध्ययन हेतु प्रवृत्त हैं और जो कुछ दोषपूर्ण एवं असत्य है, उसका त्याग कर मोक्ष के पिपासु हैं, वे ही इस भीषण संसार को पार कर सकते हैं। जो सत्यवादी और शुद्ध हैं, जो वेदों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करते हैं और जो सन्तों की संगति में रहते हैं, वे विनाश से बच जाते हैं। वे पूर्णता और अमरता प्राप्त करते हैं। जिन्होंने आत्मज्ञान द्वारा प्रकाश प्राप्त कर लिया है, अष्ट दिग्पालों द्वारा उनकी रक्षा होती है। जो ज्ञान के पिपासु और सत्यान्वेषी हैं, जो शुद्ध वैश्विक प्रेम से सम्पन्न हैं और जो निरन्तर आत्मिक विचार में संलग्न हैं, वे ही सच्चे मानव कहलाते हैं। अन्य सभी पशु मात्र हैं।

"किसी को भी गलत मार्ग पर नहीं चलना चाहिए। किसी को अकरणीय कर्म नहीं करने चाहिए। अमृत-पान के बाद भी राहु को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा, क्योंकि वह गलत मार्ग पर चला और उसने गलत कर्म किया था।

"बुद्धिमान् लोग जो धर्मग्रन्थों के ज्ञान और सद्‌गुणों से सम्पन्न हैं, जो सही मार्ग पर चलते हैं, जो आचार-विचार के नियमों का पालन करते हैं और जो इन्द्रिय-सुखों की कामना नहीं करते, वे आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं। वे कोई भी कार्य कर सकते हैं, चाहे कितना कठिन क्यों न हो। वे कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं। उन्हें सरलता से प्रसिद्धि, दीर्घायु और आत्मज्ञान प्राप्त हो सकते हैं। जो चीजें अन्य जन प्राप्त नहीं कर सकते, वे उन्हें सरलता से प्राप्त हो सकती हैं। संकट और कठिनाइयाँ उनसे दूर भागती हैं। वे असाधारण व्यक्ति हैं। उनमें अपने भाग्य को वश में करने की, समस्त बुराई को भलाई में परिणत करने की और अपनी समृद्धि को चिरस्थायी बनाने की शक्ति होती है। अपने समस्त प्रयासों में वे अत्यधिक सफल होते हैं।"

"हे राम! सारे दुःख, भय और चिन्ताओं को त्याग कर धर्मग्रन्थों द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलो। आत्मा के ज्ञान के बिना भौतिक पदार्थों से क्या लाभ है? भौतिक सम्पत्ति को तिनके के समान समझो। धन-सम्पत्ति केवल विपत्तियाँ लाती है। निष्कामता परम शान्ति और शाश्वत सुख की प्राप्ति की ओर अग्रसर करती है।

भीम, भास और दृढ़ की कथा

"सन्तों की संगति के अतिरिक्त इस संसार-सागर से मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। तीर्थयात्रा, तपस्या और शास्त्रों का अध्ययन आदि तुम्हारी मुक्ति के लिए किसी काम के नहीं हैं। साधक को किसी सन्त के पवित्र चरणों में साष्टांग प्रणिपात कर उसकी सहायता से जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाना चाहिए। सन्त वह है जिसने अपने अहंकार और क्रोध का नाश कर दिया है, जिसे आत्मा का ज्ञान है, जो धर्म के मार्ग पर चलता है और धर्मशास्त्रों के निर्देशानुसार अपना जीवन व्यतीत करता है। जिन्होंने ब्रह्म-साक्षात्कार नहीं किया हो, उन्होंने चिदाकाश को नहीं पहचाना है; परन्तु जिन्होंने ब्रह्म को पहचान लिया है, उन्हें स्वयं चिदाकाश कहा जाता है। यदि अहंकार-रूपी बादल (तुच्छ 'मैं') ज्ञान-रूपी सूर्य को ढक देता है, तो ब्रह्म-रूपी कमल (अनन्त 'मैं') कभी नहीं खिलेगा। पुनर्जन्म-रूपी तने सहित 'अहंकार'-रूपी अंकुर, 'मेरा' और 'तेरा'-रूपी लम्बी-लम्बी शाखाओं सहित सर्वत्र फैला हुआ है और वह विपत्तियों, दुःख और कष्ट-रूपी फल देता है। जब तक अहंकार रहेगा, कामनाओं का अन्त नहीं होगा। जो अपने हृदय से अहंकार के अंकुर को जड़ से निकाल फेंकता है, वह निश्चय ही (संसार-वृक्ष रूप से अभिहित) माया के वृक्ष को सैकड़ों शाखाओं में बढ़ने से रोक सकेगा।"

अब राम वसिष्ठ जी से बोले- "हे सम्माननीय गुरुदेव! अहंकार की क्या प्रकृति है? इस भयंकर अहं-भाव को हम किस प्रकार नष्ट कर सकते हैं ? अहं को नष्ट करने से क्या लाभ है? क्या अहं-भाव शरीर में है या मन में अथवा दोनों में, अथवा शरीर त्यागने से इससे छुटकारा मिलता है?"

वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया- "जो न किसी वस्तु की इच्छा रखता है और न किसी वस्तु से घृणा करता है, जो हर समय मन की शान्ति बनाये रखता है, वह अहं-भाव से प्रभावित नहीं होता। तीनों लोकों में तीन प्रकार का अहं-भाव है। इनमें से दो प्रकार लाभदायक एवं उच्च प्रकृति के हैं; किन्तु तीसरा निकृष्ट प्रकार का है। उसे बिलकुल त्याग देना चाहिए।

"प्रथम अत्युच्च और अविभाज्य अहं है जो शाश्वत है और सारी सृष्टि में व्याप्त है। वह परमात्मा है जिसके अतिरिक्त प्रकृति में कुछ नहीं है। **'अहं ब्रह्माऽस्मि'** - मैं ब्रह्म हूँ' मन्त्र पर ध्यान करो। अपने-आपको ब्रह्म से एकाकार करो। यह सात्त्विक अहंकार है।

"जो ज्ञान हमारी अपनी आत्मा को अनाज की नोक से भी अधिक सूक्ष्म अथवा बाल के सौवें भाग के समान छोटा और सदा रहने वाला बताता है, वह दूसरे प्रकार का अहंकार है। ये दो प्रकार के अहंकार जीवन्मुक्त अथवा मुक्त सन्तों में पाये जाते हैं। ये मनुष्य को मुक्ति की ओर अग्रसर करते हैं। ये बन्धन का कारण नहीं होते। अतः ये लाभप्रद एवं उच्च प्रकृति के हैं।

"तीसरे प्रकार का अहंकार वह ज्ञान है जो 'मैं' को हाथ, पाँव आदि से बनी देह से एकरूप मानता है, जो शरीर को ही आत्मा समझता है। यह अहं का सर्वाधिक निकृष्ट रूप है। यह सभी सांसारिक लोगों में पाया जाता है। पुनर्जन्म-रूपी विषैले वृक्ष के बढ़ने का यही कारण है। इस प्रकार के अहं वाले मनुष्य कभी होश में नहीं आ सकते अर्थात् उन्हें कभी समझ नहीं आ सकती। असंख्य लोग इस प्रकार के अहंकार से भ्रमित हैं। उन्होंने अपनी बुद्धि, विवेकशीलता और विचार-शक्ति को खो दिया है। इस प्रकार के अहंकार से घातक परिणाम निकलते हैं। मनुष्य जीवन की बुराइयों के प्रभाव में आ जाते हैं। जो इस प्रकार के अहंकार के दास हैं, वे दोषपूर्ण कर्म करने की प्रेरणा देने वाली अनेक कामनाओं से पीड़ित होते हैं। यह उन्हें पशु-जैसी अवस्था में ले जाता है। इस प्रकार के अहंकार को येन-केन-प्रकारेण निर्दयता से नष्ट कर देना चाहिए।

"इस निकृष्ट अहंकार को दूसरे दो प्रकार के अहंकारों से नष्ट कर देना चाहिए। जितना ही तुम इस निकृष्ट अहं को कम करोगे, उतना 'ब्रह्मज्ञान' अथवा आत्मा का प्रकाश प्राप्त होता जायेगा।

"प्रथम दो उच्च प्रकार के अहंकारों के द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करने का प्रयास करो। यदि तुम इस परमोच्च निर्मल स्थिति में दृढ़ता से स्थित हो जाओ, जहाँ इन दो अहंकारों को भी एक-एक करके छोड़ दिया जाये, तब वह स्थिति ब्रह्म का अविनाशी पद है। 'मैं' को भौतिक शरीर से एकरूप (देहाध्यास) मत करो। अपने-आपको परमोच्च आत्मा अथवा परब्रह्म से एकाकार करो।

"हे राम! सत्य में स्थित हो कर मुक्त रहो, ऐसी स्थिति में तुम अहंकार के आवेग से भी मुक्त हो। मनुष्य के ऊपर अहं के प्रभाव के दृष्टान्त-रूप में तुम इस कथा को ध्यानपूर्वक सुनो!

"पाताल में एक शम्बर नाम का बलशाली असुर था, जो जादू की कला में निपुण था। वह स्वर्ग में देवताओं तक के लिए भय बना हुआ था। एक बार उसने देवताओं से युद्ध करने के लिए अपनी अजेय सेना भेजी। उसने अरनी सेना की रक्षा हेतु दम, व्याल और कट-तीन राक्षस उत्पन्न किये। इन राक्षसों के कोई पूर्व-जन्म नहीं थे, अतः वे हर प्रकार के मानसिक अनुबन्धन से मुक्त थे। यद्यपि उनमें कोई अहं-भाव नहीं था, फिर भी उनमें ज्ञान का प्रकाश नहीं था। वे इस प्रकार मृत्यु के भय से रहित हुए युद्ध करते थे जैसे कोई बालक अग्नि से खेलता हो। उन्होंने देवताओं को बहुत परेशान किया।

"निरन्तर युद्ध करते रहने से, उनमें धीरे-धीरे 'मैं' पन का भाव उत्पन्न हो गया। एक बार अहं-भाव उठने पर शरीर में जीवन को बढ़ाने, धन-सम्पत्ति, स्वास्थ्य और भोगैश्वर्य आदि प्राप्त करने की कामनाएँ उत्पन्न होने लगीं। इन कामनाओं ने उनकी इच्छा-शक्ति को दुर्बल बना कर उनके मनों में विक्षेप उत्पन्न कर दिया। वे लड़ने में असमर्थ हो गये और उन्हें मृत्यु-भय सताने लगा। देवताओं ने इस स्थिति का लाभ उठा कर भयंकर आक्रमण कर दिया। भयभीत हो कर तीनों राक्षस भाग गये। फिर देवताओं ने असुरों की सेना को परास्त कर दिया।

"शम्बर इस प्रकार चिन्तन करने लगा - 'दम, व्याल और कट, जिन्हें मैंने अभिमानी देवताओं के विनाश हेतु उत्पन्न किया था, अपने अभिमान, मूर्खता और अहं-भाव के कारण युद्ध में पछाड़ दिये गये। वे आत्मज्ञान से रहित थे। उनमें 'मैं' और 'मेरा' पन का प्रबल भाव था। अब मैं फिर अपनी माया-शक्ति से असुर उत्पन्न करूँगा जो आत्मज्ञान से पूर्ण होंगे, जो आत्मज्ञान के शास्त्रों में दक्ष होंगे और जो मिथ्या अहंकार से रहित होंगे। वे युद्ध में देवताओं को पराजित कर सकेंगे।'

"फिर शम्बर ने अपनी माया-शक्ति से तीन असुरों को उत्पन्न किया। उन्होंने समुद्र की सतह पर छाये हुए बुलबुलों की भाँति आकाश-मण्डल को परिपूर्ण कर दिया। वे सर्वज्ञ थे। उन्हें आत्मा का ज्ञान था। वे सब वैराग्यवान् और निष्पाप थे। उनका चित्त शान्त था। वे दैवी गुणों से सम्पन्न थे। वे प्रेम, घृणा, संशय, भय, भ्रम, आसक्ति, अहंकार और 'मेरा' पन से रहित थे। वे सारे ब्रह्माण्ड की लेश मात्र भी परवाह नहीं करते थे। वे भीम, भास और दृढ़ नामों से जाने जाते थे।

"शम्बर ने उन्हें देवों से युद्ध करने हेतु आदेश दिया। वे असंख्य वर्षों तक लड़ते रहे। उनमें गर्व उत्पन्न नहीं हुआ। देवताओं से लड़ने में वे निर्भय रहे। वे इस दृढ़ विश्वास से भाग निकलते थे कि सारहीन देह कुछ नहीं है और जिसे लोग 'मैं' कहते हैं, वह भी कुछ नहीं है। उन्हें भूत और भविष्य का कोई विचार नहीं था। उन्हें मृत्यु का भय नहीं था। उनका मन किसी वस्तु में आसक्त नहीं था। स्वयं को हन्ता माने बिना वे शत्रुओं को मारते थे। वे कामनाओं से पूर्णतया मुक्त थे। वे अपना कर्तव्य करके भी अपने को अकर्ता मानते थे। वे युद्ध इस भाव से लड़ते थे कि अपने स्वामी शम्बर के प्रति कर्तव्य पालन कर रहे हैं। वे आसक्ति और प्रेम से विहीन थे। जो लोग अहंकार

रहित हैं और जो आत्म-चिन्तन का अभ्यास करते हैं, वे जन्म-मृत्यु के भय से रहित हो जायेंगे। जो-कुछ पदार्थ सरलता से उपलब्ध होवें, उनसे वे सदा सन्तुष्ट रहेंगे। वे सबको समदृष्टि से देखेंगे।

"सारे देवता युद्धक्षेत्र से भाग कर भगवान् हरि की शरण में गये और उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। भगवान् हरि ने युद्धक्षेत्र में जा कर, तीनों असुरों के साथ युद्ध किया। भगवान् के द्वारा असुरों का संहार हुआ और उन्हें वैकुण्ठ-धाम को भेज दिया गया। भगवान् हरि के द्वारा मारे गये अथवा बचाये गये, दोनों ही समान रूप से उनके परम धाम के अधिकारी हैं।

"वासनाएँ (सूक्ष्म वृत्तियाँ) बन्धन पैदा करती हैं। यदि वासनाओं का नाश कर दिया जाये, तो बन्धन विलीन हो जायेगा। आत्मज्ञान रूपी अग्नि से सारी वासनाएँ भस्म हो जाती हैं। यदि कामनाएँ नष्ट हो जायें, तो मन बिना घी के दीपक के समान निश्चलता प्राप्त कर लेगा। मन अपने अस्तित्व को इसलिए प्राप्त करता है, क्योंकि लोग पदार्थों के विचार को प्रश्रय देते हैं और पदार्थों के संस्कार मन पर पड़ते हैं। यदि इन विचारों का नाश कर दिया जाये, तो मन तुरन्त विलीन हो जायेगा। कामनाओं के कारण ही मन संसार में बन्दी रहता है। मन के कामनाओं से मुक्त होने पर वह मुक्त हुआ कहलाता है।

"प्रथम तीन असुर-दम, व्याल और कट-अपने अहंकार के कारण पराजित हुए। भीम, भास और दृढ़ नामक असुरों ने अहंकार-हीनता के कारण विजय प्राप्त की।

"हे राम! उपर्युक्त कथा से तुम भली प्रकार समझ सकते हो कि जो लोग 'अहं-भाव' से रहित हैं, वे सदा सफलता प्राप्त करेंगे। दम, व्याल और कट के उदाहरण का कभी अनुसरण मत करना। भीम, भास और दृढ़ के आचरण को अपनाओ। हे निष्कलंक राम! अपने आत्मज्ञान के द्वारा समस्त बातों को भली प्रकार से समझ कर सदा के लिए आनन्दमय आत्मा में शान्तिपूर्वक वास करो।"

५.उपशान्ति-प्रकरण

लय

वसिष्ठ जी राम से इस प्रकार बोले- "हे मनस्वी राम! यह समझ लो कि यह विश्व मिथ्या है। यह ब्रह्माण्ड केवल आत्मज्ञान की प्रकृति का है। राजसी और तामसी प्रकृति के लोग, क्रमशः क्रियाशीलता तथा आसक्ति अथवा प्रमाद और अज्ञानता से युक्त हुए, जन्म और मृत्यु के विचार से भ्रमित रहते हैं। परोपकार की सात्त्विक प्रकृति वाले लोग इस गहन भ्रम को सरलता से निकाल देते हैं जैसे सर्प अपनी कैंचुली उतार फेंकता है। vec 4 सदा जन्म-मरण के भय से मुक्त रहते हैं। सत्संग, शास्त्रों का स्वाध्याय और सही आचरण के अभ्यास द्वारा वे विवेक, अन्तर्दृष्टि और उचित ज्ञान से सम्पन्न होते हैं।

"सत्य और असत्य के भेद को समझना सीखो और सत्य पर स्थिर रहो। जो पहले कभी नहीं था और अन्त में भी जिसका अस्तित्व नहीं रहेगा, वह कदापि सत्य नहीं है। जो प्रारम्भ में और अन्त में दोनों समय रहता है, वह सत्य अथवा यथार्थ है। विश्व को उत्पन्न करने वाला मन है।"

राम बोले-"मैं पूर्ण आश्वस्त हूँ कि मन विश्व का उत्पत्तिकर्ता है। हे पूज्य मार्ग-दर्शक! मुझे बताइए कि मन के द्वारा उत्पन्न भ्रम को नष्ट करने के अचूक उपाय क्या है?"

वसिष्ठ जी ने कहा- "शास्त्रों का ज्ञान, वैराग्य और सन्तों का संग मन के द्वारा उत्पन्न किये भ्रम का विनाश करने में सहायक होगा। पावन सन्तों के उपदेश साधक को आत्म-विचार का अभ्यास करने में सहायक होते हैं। वह असत्य से सत्य को पहचानने में समर्थ होता है। हे राम ! यह जान लो कि यह ब्रह्माण्ड सार्वभौम आत्मा का ही विस्तार है। एक वस्तु से दूसरी वस्तु को भिन्न समझने की भूल त्याग दो। सब ब्रह्म ही है। इस विचार का नाश कर दो कि मैं और सृष्टि भिन्न हैं।

"जिस प्रकार विस्तृत सागर के जलों में कोई भेद नहीं है, इसी प्रकार शाश्वत और सर्वव्यापक ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। सबको एक ही मानने के विश्वास में कोई भूल नहीं है। यह समझ लो कि द्वैत है ही नहीं। अपने-आपको एक आध्यात्मिक सत्ता मानो । समस्त रचित पदार्थों का वस्तुतः अस्तित्व नहीं है। यह समझ कर कि तुम ब्रह्म से भिन्न नहीं हो, सब दुःखों को त्याग दो। यह विचार मत करो कि तुम कोई विवशता की स्थिति में हो। सहनशील, शान्त और समचित्त बनो।

"सुख और दुःख, जन्म और मृत्यु, गर्मी और सर्दी, लाभ और हानि, निन्दा और स्तुति, आदर और निरादर-मन की कल्पना मात्र है। मात्र एक परम सिद्धान्त है और वही सदा रहता है।

"भूत अथवा भविष्य के विषय में विचार मत करो। शान्त और निरासक्त बनो। विवेकी बनो। सभी आशाओं और अपेक्षाओं को त्याग दो। ब्रह्म में निवास करो और सागर के समान पूर्ण हो जाओ तथा संसार की उत्तेजनापूर्ण चिन्ताओं से मुक्त हो जाओ। प्रेम और घृणा से ऊपर उठो । सांसारिक पदार्थों के लिए आकांक्षा त्यागो। सबके प्रति समदृष्टि विकसित करो। शान्त रहो। अपनी अन्तर्ज्योति से मणि की भाँति चमको। आत्मज्ञान में दृढ़ विश्वास रखो। अपने में सन्तुष्ट रह कर उत्तेजनापूर्ण संसार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाओ।

"मनुष्य अपने अन्तिम जन्म में अत्यन्त सरलता से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करेगा। वह अपने अन्तिम जन्म में सन्तों के समस्त गुण-सार्वभौम प्रेम, उदारता, तितिक्षा, समदृष्टि, समचित्तता, करुणा, क्षमा आदि प्राप्त कर लेगा।

राजा जनक की कथा

"आत्माओं कि मुक्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले दो मार्ग हैं। एक वह मार्ग है जिसमें शिष्य गुरु के निर्देशों का ध्यानपूर्वक अनुसरण करता है। जिस जन्म में गुरु से दीक्षित हुआ है, उसी जन्म में मुक्ति मिल जायेगी अथवा आने वाले किसी जन्म में। दूसरा मार्ग है स्व-साधना से ज्ञान प्राप्त करना। मनुष्य में ज्ञान स्वतः जागृत होता है। आकाश से अप्रत्याशित रूप से गिरे हुए फल की भाँति उसमें ब्रह्मज्ञान का उदय हो जाता है। हे राम ! अब मैं तुमसे एक प्राचीन कथा का वर्णन करूँगा, जिसमें ऊपर बताये हुए द्वितीय मार्ग के अनुसार आकाश से गिरे हुए फल की भाँति आत्मज्ञान जागृत हुआ था।

"एक बार विदेह राज्य में एक बलशाली और गुणी राजा राज्य करते थे। उनका नाम जनक था। वे बड़े धनी, उदार और सज्जन थे। वह विष्णु के समान प्रजा की रक्षा करते थे। वह अनेक सद्‌गुणों से सम्पन्न थे।

"एक दिन वह वसन्त ऋतु के सुहावने मौसम में अपने सुन्दर उद्यान में गये, जो विभिन्न प्रकार के सुगन्धित पुष्पों से परिपूर्ण था। अपने मन्त्रियों एवं अनुचरों को उद्यान के बाहर छोड़ कर वे अकेले ही उद्यान में चारों तरफ भ्रमण करने लगे। वहाँ उन्होंने सिद्धों के गीत सुने। हे कमलनयन राम! अब मैं तुम्हें सिद्धों के गीत सुनाऊँगा, जो उनके अनुभवों का वर्णन करते हैं।

"प्रथम सिद्ध ने गाया- 'ज्ञाता और ज्ञेय परस्पर मिलते हैं। वैयक्तिक आत्मा परम आत्मा में लीन हो जाता है। परम ज्ञान एवं सुख की उत्पत्ति होती है। यह आत्मज्ञान है। इसकी आकांक्षा होनी चाहिए।'

"दूसरे सिद्ध ने गाया- 'मनुष्य को समस्त वासनाओं का उन्मूलन करके सारे दृश्य पदार्थों का त्याग कर देना चाहिए और आत्मा अथवा ब्रह्म पर निरन्तर ध्यान लगाना चाहिए जो समस्त ज्योतियों की ज्योति है।'

"तृतीय सिद्ध ने गाया- 'हमें सर्वव्यापक, शाश्वत प्रकाश पर निरन्तर ध्यान करना चाहिए जो सारे अन्य पदार्थों को प्रकाशित करता है, जो सबके मध्य है और जो नहीं है और जो सत् और असत् के मध्य निष्पक्ष केन्द्र है।'

"चौथे सिद्ध ने गाया- 'हम उस स्वयं ज्योतिर्मयी आत्मा पर ध्यान लगाते हैं जो सदैव अपने को समस्त जीवों अथवा आत्माओं में 'मैं' कहता है और जो 'अ' अक्षर से प्रारम्भ हो कर 'ह' में अनुस्वार से समाप्त होता है 'अहं', जिसे हम 'सोऽहं' से श्वास-प्रश्वास के साथ निरन्तर अन्दर ले जाते और बाहर निकालते हैं।'

"कुछ सिद्धों ने गया-'हम उस यथार्थ अस्तित्व की उपासना करते हैं, जो सब-कुछ है, जिसकी सभी वस्तुएँ हैं और जिसके द्वारा सब-कुछ बना है। हम उसकी स्तुति करते हैं जिससे सबकी उत्पत्ति हुई है, जिसके लिए उनका अस्तित्व है, जिसमें वे निहित हैं, जिसमें सब वापस जाते हैं, और जिसमें सब विलीन हो जाते हैं।'

"कुछ और सिद्धों ने कहा- 'जो लोग हृदय की गुहा में स्थित परमात्मा को छोड़ कर बाहर ईश्वर को खोजते हैं, वे वस्तुतः अपने हाथ में रखी अमूल्य कौस्तुभ मणि को त्याग कर सीपी की खोज में रत हैं।'

"सिद्धों के एक अन्य समूह ने गाया- 'यह आत्मा केवल उनके द्वारा प्राप्त की जा सकती है जिन्होंने समस्त वासनाओं का पूर्णतया नाश कर दिया है।'

"एक और समूह ने गाया- 'जो लोग विश्व के पदार्थों में सुख नहीं है, यह जानते हुए भी अपने चित्त को उनमें लगाये रखते हैं, वे मानव नहीं, गधे हैं।'

"एक पाँचवें समूह ने गाया- 'शरीर के विवरों से बारम्बार निकल कर फुफ्कार करने वाले इन्द्रिय-रूपी सर्पों को विवेक-रूपी शलाका से इस प्रकार मार देना चाहिए जिस प्रकार इन्द्र ने अपने वज्र से पहाड़ों को तोड़ डाला था।'

"सिद्धों के अन्तिम समूह ने गाया - 'जिसका चित्त शान्त है और जो समदृष्टि से सम्पन्न है, वह अमर आत्मा को प्राप्त करेगा जो सुख और ज्ञान स्वरूप है और जो परिपूर्ण सत्ता है। यह मोक्ष अथवा अन्तिम मुक्ति है।'

(सिद्धों के ये गीत 'सिद्धगीता' हैं।)

"सिद्धों के गीतों से जनक अत्यधिक प्रभावित हुए। वह तुरन्त उद्यान से चले गये, अपने मन्त्रियों एवं अनुचरों को भेज कर स्वयं महल की सबसे ऊपर की मंजिल के कक्ष में बन्द हो कर बैठ गये। वहाँ सिद्धों द्वारा गाये हुए गीतों के यथार्थ अर्थ पर गहन चिन्तन करने लगे।

"वह अपने-आपसे यह कहने लगे- 'मैं संसार का क्या भरोसा कर सकता हूँ और किस प्रकार मैं इस विश्व पर निर्भर रह सकता हूँ, जिसमें कुछ सार ही नहीं है, न सुख है न ही यथार्थता? और फिर भी, मैं नहीं जानता कि मेरा चित्त इसके द्वारा क्यों भ्रमित है। मैं सदैव दुःख और विपत्तियों से ग्रसित रहता हूँ यद्यपि मेरे पास प्रचुर धन-सम्पत्ति है। मेरे जीवन के सौ वर्ष शाश्वतता में एक क्षण के समान हैं; फिर भी मैंने अपने जीवन को बड़ी महत्ता दी हुई है। असंख्य ब्रह्माण्डों से तुलना करने पर मेरा साम्राज्य अणु मात्र है। मैं अपनी वासनाओं एवं इन्द्रियों का दास बन गया हूँ। मेरे राज्य की अवधि छोटी-सी है। यह कैसे है कि एक विचारहीनव्यक्ति की भाँति मैं इसकी अवस्थिति में स्वयं को सुरक्षित अनुभव करता हूँ। वर्तमान जीवन नाशवान् है, फिर भी मैं मूर्ख इस पर भरोसा किये हुए हूँ। इन्द्रियों के पदार्थ जो मुझसे दूर हैं, वे समीप प्रतीत होते हैं; और जो सर्वाधिक समीप है-मेरी अन्तरात्मा-वह मेरी अज्ञानता के कारण मुझे सर्वाधिक दूर प्रतीत होती है। मुझे अपनी अन्तर्तम आत्मा, जो शाश्वत है, को पहचानने के लिए ऐन्द्रिक पदार्थ त्याग देने चाहिए।

"प्रत्येक वस्तु नाशवान् है। यहाँ कोई भी वस्तु स्थायी और लाभप्रद नहीं है। महानतम पुरुष भी कालान्तर में निम्नतम क्यों हो जायेंगे? इस अज्ञानता ने कहाँ से मेरी आत्मा को आवृत कर लिया है? जब मैं कष्ट और विपत्ति में हूँ, तब यह सम्पत्ति और अनेकों सम्बन्धी गण किस काम के हैं? मेरी धन-सम्पत्ति पानी के बुलबुले के समान है। यह मेरे सामने मिथ्या अभिव्यक्ति है। कई सम्राट् और राजा अपनी सम्पत्ति सहित नष्ट हो गये। कई इन्द्र शाश्वतता-रूपी समुद्र में बुलबुलों की तरह निगले जा चुके हैं। अतएव किसी वस्तु का कोई भरोसा नहीं है।

"करोड़ों ब्रह्मा चले गये। पृथ्वी के राजा धूल में मिल गये। फिर मेरे जीवन और उसके स्थायित्व में क्या विश्वास? संसार एक दीर्घ स्वप्न है और ऐन्द्रिक शरीर मन की भ्रान्ति है। यदि मैं शरीर और पदार्थों का भरोसा करूँ, तो सचमुच दोषी हूँ। असंख्य ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा और जीव आये और गये। हे मन! फिर तुम्हारे अस्तित्व का स्थायित्व कहाँ है? मेरा अपना विचार और अन्य पदार्थों का दर्शन, मेरे मन की मिथ्या कल्पना है। मेरे अहं-भाव ने मुझे पकड़ रखा है। अपनी इच्छाओं, अहंकार और शरीर के प्रति आसक्ति के कारण मैंने अपने को इस अज्ञानपूर्ण स्थिति में डाल दिया है। मैं मूर्ख हूँ। प्रतिक्षण मेरे जीवन की अवधि नापी जाती है। दिन और रातें बीत रही हैं और फिर भी मैंने अपने सत्य और अक्षुण्ण आत्मा को नहीं पहचाना। काल-रूपी जादूगर, इस विश्व-रूप खेल के मैदान में, सब मनुष्यों को खिलौने बना कर उन्हें गेंदों की भाँति उछाल रहा है। बस, जितने जीवन मैंने बिताये, वे पर्याप्त हैं।

'हम एक के बाद दूसरी कठिनाई सहते रहते हैं और फिर भी इतने निर्लज्ज हैं कि इस विपत्तिपूर्ण सांसारिक जीवन से ऊबते नहीं। हम देखते हैं कि सारे पदार्थ नाशवान् हैं, फिर भी हम अविनाशी की खोज नहीं करते। अज्ञानी जन नित्य-प्रति अत्यन्त पापमय कृत्य करते हैं। युवावस्था में अज्ञानता में डूबे रहते हैं; प्रौढ़ावस्था में वासनाओं से दग्ध होते हैं और स्त्रियों के पाश में फँसे रहते है; वृद्धावस्था में वे अपने परिवार की चिन्ताओं से दबे रहते हैं। वे संसार के भार से कराहते हैं। वे दुःख और पश्चात्ताप से घिरे हुए मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। उन्हें शुभ कर्म करने और ईश्वर की उपासना का समय कब मिलेगा ?

'हम सदैव इस खोज में रहते हैं कि दूसरों की अपेक्षा क्या अधिक आनन्ददायक और स्थायी है, परन्तु अमर आत्मा को कभी नहीं खोजते जो हमारी समस्त सांसारिक चिन्ताओं से परे हैं। स्त्रियाँ, अपने कमल-नेत्र तथा आकर्षक मुस्कराहट सहित शीघ्र ही म्लान हो कर मृत्यु को प्राप्त होती हैं। यदि अनेकों ब्रह्मा और विष्णु पलक

झपकने मात्र से उत्पन्न हों और नष्ट हो जायें, तो उनके सामने मैं क्या हूँ-एक तुच्छ जीव हूँ। ज्ञानी जनों ने इस विश्व को विपत्तियों का एक असीम सागर कहा है। फिर यहाँ कोई सुख की आशा कैसे कर सकता है?

"संसार-रूपी वृक्ष की जड़ चित्त है जो पुष्प, कोपलों और फलों से युक्त शाखाओं से चतुर्दिक् प्रसारित है। यह माया कैसे आयी? यह मन विश्व-रूपी मंच पर नृत्य करता है जो संकल्प कहलाता है। मन संकल्पों का समूह है। यदि संकल्पों का नाश हो जाये अर्थात् संकल्प न रहें, तो जन्म-मृत्यु-रूपी वृक्ष भी नष्ट हो जायेगा। मुझे आत्मा-रूपी मोती का अपहरण करने वाले चोर का पता लग गया है। अब मैं जाग गया हूँ। मैंने अपनी आत्मा के चोर को पहचान लिया है-उसका नाम मन है। मैं दीर्घ काल से इस कपटी दुष्ट द्वारा ठगा जा रहा हूँ। अब मैं इसके द्वारा स्वयं को भ्रमित नहीं होने दूँगा। मैंने इसे मार डालने का निश्चय कर लिया है। मैं विवेक-रूपी सुई से मन का भेदन करूँगा और आत्म-संयम और अनासक्ति-रूपी गुणों की डोरी से इसे बाँध दूँगा। अब मैं आध्यात्मिक ज्ञान के लिए जागृत हो गया हूँ और अपनी आध्यात्मिक खोज में सतत लगा रहूँगा। मैंने अपनी चिरकाल से खोयी हुई आत्मा को पा लिया है। मैं अपनी शुद्ध अमर आत्मा का सतत चिन्तन करके परम शान्ति प्राप्त करूँगा। मैं अपने प्रबल शत्रु मन को पराजित कर दूँगा और यह विचार त्याग दूँगा कि 'मैं शरीर हूँ और यह धन-सम्पत्ति तथा अन्य सामग्री मेरी है।'

'सिद्धों के मर्मस्पर्शी गीत (सिद्धगीता) सुन कर मैंने समस्त आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त कर लिये हैं। मैं उन्हें अपना गुरु समझता हूँ। मैंने अपने चित्त का पूर्णतया नाश कर दिया है। अब मैं शाश्वत सुख की अनुभूति कर रहा हूँ। मैं दुःख और कष्टों से पूर्णतया मुक्त हूँ। द्वैत-भाव, विभिन्नता और भेद लुप्त हो गये हैं। मैं सर्वत्र एक आत्मा का दर्शन कर रहा हूँ। मैं सदा शान्त हूँ।

'मैं, वह, तुम, यहाँ, वहाँ, अब और तब के विचार मुझमें नहीं रहे। मैं आत्मज्ञान की सराहना करता हूँ, जिसने मेरी अज्ञानता का विनाश करके मुझे इस उच्च स्थिति पर ला दिया है।'

"इस प्रकार जनक दीर्घ काल तक समाधि में स्थित रहे। वह समाधि से जाग कर कहने लगे- 'मैं अब सर्वत्र एकमात्र अविभाज्य ब्रह्म को देखता हूँ। सदैव अपने स्वरूप में स्थित हूँ। कुछ भी मुझे बाधित नहीं कर सकता। मैं प्रेम और घृणा से निरन्तर मुक्त हूँ। सांसारिक पदार्थों की मुझे कामना नहीं रही। मैं वासना रहित हूँ। मुझे समदृष्टि प्राप्त हो गयी है। मैं समता का अधिकारी हो गया हूँ।'

"फिर वह बिना कर्तृत्व की भावना के राजकाज करने लगे। बिना काल का चिन्तन अथवा आकांक्षा किये वे राजकीय कर्तव्यों का निर्वहन करने लगे। वे जीवन्मुक्त अर्थात् जीवित रहते हुए भी मुक्त हो गये। वे न भूत की परवाह करते थे न भविष्य की। "हे राम! आत्मज्ञान सतत आत्म-चिन्तन मात्र से प्राप्त किया जा सकता है, कर्मों से नहीं। सांसारिक वृत्ति वाले लोग ऐन्द्रिक पदार्थों से चिपटे रहते हैं। पूर्व-जन्म में किये गये प्रयासों के फल-स्वरूप आत्मज्ञान की आकांक्षा होती है। मनुष्य को चाहिए कि दुःख एवं पुनर्जन्म के जनक घोर अज्ञान को नितान्त नष्ट कर दे।

"यदि कोई परमात्मा को प्राप्त करना चाहता है, तो उसे सर्वप्रथम कामनाओं, आकांक्षाओं और अहं-भाव को नष्ट करना होगा।

"अहंता-रूपी मेघ के छिन्न-भिन्न होने पर दिव्य ज्योति सूर्य के समान प्रकाशमान होती है। जिसने आत्मा को पहचान लिया है, वह बाह्य संसार के विचारों से मुक्त हो जाता है। उसको इस संसार के सुख-दुःख प्रभावित नहीं करते। वह प्रेम और घृणा से मुक्त हो जाता है। ब्रह्म-रूपी सूर्य को आवृत करने वाला अहंकार-रूपी गहन

मेघ आत्मज्ञान से छिन्न-भिन्न हो जाता है। ज्ञानियों की हृदय-रूपी गुहा में बन्द अमूल्य ज्ञान-रूपी रत्न कल्पवृक्ष के समान क्षण-भर में मनवांछित फल देगा।

"चित्त का खेल ही इस विश्व के रूप में प्रकाशमान है। यह संसार ब्रह्म से भिन्न नहीं है। इसका कोई अलग अस्तित्व नहीं है। यह विश्व, विश्व के रूप में, कभी नहीं है। यह विश्व ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है। मन-रूपी ब्रह्म इस सृष्टि के रूप में प्रकट होता है।

"अनासक्ति, एकत्व के ज्ञान से मिल कर मन-तत्त्व को पिघला देती है। फल-स्वरूप सर्वोत्तम एवं उच्चतम सुख की स्थिति प्राप्त होती है। मनुष्य परम आत्मा में स्थित हो जाता है जो जीवन का मुख्य ध्येय है।

"हे कमलनेत्र राम! अब तुम जनक की भाँति आत्म-तत्त्व का चिन्तन और ध्यान करके आत्मज्ञान प्राप्त करो।" इस प्रकार वसिष्ठ जी ने उपसंहार किया।

गाधि की कथा

वसिष्ठ जी बोले- "हे राम ! माया भगवान् की भ्रमात्मक शक्ति है। वह अति-प्रबल है। जिन्हें भगवत्कृपा प्राप्त है, वे ही उसे जीत सकते हैं।

"गीता में कहा गया है- 'प्रकृति के स्वभाव से निर्मित मेरी माया पर विजय पाना अति-कठिन है; परन्तु जो मेरा आश्रय लेते हैं, वे उस पर विजय प्राप्त कर सकते हैं' (७/१४)।

"माया की महिमा और अनन्त क्षमता का वर्णन करना सम्भव नहीं है। माया को जीत कर ही आत्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। मन माया का प्रबल अस्त्र है। माया मन के द्वारा काम करती है। मन माया की ही रचना अथवा उसका ही रूप है। मन पर विजय पाने से ही माया का नाश हो सकता है। जन्म और मृत्यु का दूसरा नाम माया है। गाधि की कथा ध्यानपूर्वक सुनो। तुम्हें माया और उसकी क्रियाओं का स्पष्ट ज्ञान हो जायेगा।

"कौशल नाम का एक राज्य है जो जंगलों और फल के वृक्षों से परिपूर्ण है। एक बार वहाँ गाधि नामक एक विद्वान् रहता था। वह अति-कुशाग्र बुद्धि और वेदों का परम ज्ञाता था। गुणों की वह प्रतिमा था। वह अपने मित्र-सम्बन्धियों का साथ छोड़ कर तप-साधना हेतु एक जंगल में चला गया। भगवान् विष्णु के दर्शनों की आकांक्षा से वह आठ महीने तक कण्ठ तक जल में खड़े हो कर तप करने लगे। भगवान् विष्णु गाधि के सामने प्रकट हुए और उससे तप करने का उद्देश्य पूछा।

"गाधि ने तट पर आ कर भगवान् को साष्टाग नमन किया और बोला- 'हे भगवान्! आप तीनों लोकों के आश्रय हैं। मैं सच्चिदानन्द परब्रह्म में लीन होना चाहता हूँ। कृपा कर मुझे माया और उसकी क्रियाओं की प्रकृति को साक्षात् समझने की क्षमता प्रदान करें।'

"भगवान् हरि बोले- 'सर्वप्रथम तुम माया का साक्षात् दर्शन करोगे, फिर अपनी भक्ति के द्वारा माया से मुक्त होने में समर्थ होओगे।' तत्पश्चात् भगवान् तुरन्त उसकी दृष्टि से ओझल हो गये जिस प्रकार गन्धर्वनगर।

"गाधि भगवान् का दर्शन पा कर अति-प्रसन्न हुआ। भगवान् के संसर्ग में आने से उसका हृदय आनन्दमग्न हो गया। फिर उसने कुछ दिन वन में व्यतीत किये। एक दिन जब वह सरोवर में स्नान कर रहा था, वह भगवान् हरि के शब्दों पर विचार करने लगा :

"उसने अपने-आपको अपने घर में किसी रोग से मृत पाया। उसने देखा कि समस्त मित्र-सम्बन्धी इकट्ठे हो गये थे और उसके मृत शरीर के पास रो रहे थे। उसने यह भी देखा कि उसकी भक्त पत्नी उसके चरणों के पास बैठी फूट-फूट कर रोती हुई अश्रुधारा बहा रही थी। उसने देखा कि उसकी माता असह्य दुःख से उसका आलिंगन कर रही थी। फिर उसने देखा कि उसके रोते-चीखते सम्बन्धियों ने उसके मृत शरीर को स्नान कराया और अन्तिम संस्कार सम्पन्न किये और देह को जला दिया। इस प्रकार गाधि ने सरोवर के जल में खड़े-खड़े ही मन की मिथ्या क्रियाओं को, मन के द्वारा देख लिया।

"तत्पश्चात् गाधि ने (इस स्वप्न में) भूटान के पास एक गाँव में रहने वाली काले रंग की एक चाण्डाल स्त्री से लड़के के रूप में पुनः जन्म लिया। वह सोलहवें वर्ष में आया। वह भी वर्षा ऋतु के काले मेघ जैसे वर्ण का था। उसने उसी जाती की कन्या से विवाह किया और उसके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा। उसके कई बच्चे थे। वह वृद्ध हो गया। पत्तों और फूस की झोपड़ी में साधु की भाँति रहने लगा। उसके सारे कुटम्बी जन मृत्यु के क्रूर हाथों के शिकार बन गये। वह अकेला ही जीवित रहा।

"वह एकाकी जीवन से ऊब गया, अतः विभिन्न देशों में जाने लगा। अन्त में कीर नामक धनी नगर में पहुँचा। वह राजकीय सड़क पर जा रहा था। उस नगर का राजा मर चुका था। राजा के कोई उत्तराधिकारी नहीं था। राजा चुनने की परम्परागत प्रथा के अनुसार वहाँ के लोगों ने राज्य के हाथी को हीरे-जवाहरात और कसीदाकारी किये हुए रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित करके राजा का चयन करने को छोड़ दिया। चाण्डाल ने हाथी को बड़ी जिज्ञासा से देखा। हाथी उसके पास आया और उसे अपनी लम्बी सूँड से उठा कर अपने हौदे पर रख लिया। लोग नगाड़े और संगीत वाद्य बजा कर आनन्द से आठों दिशाओं से चिल्लाने लगे-"तुम्हारी जय हो ! तुम्हारी जय हो!" राजभवन की सुन्दर स्त्रियों ने अनेक आभूषणों तथा पुष्पमालाओं से उसे सुसज्जित किया। उसे राजगद्दी पर बिठा दिया गया। मन्त्रिगण और मुख्य सेनापति उसके आदेश का पालन करने लगे। अब वह गवल नाम से अभिहित हुआ।

"उसने पूरे आठ वर्ष तक कीर राज्य पर शासन किया। एक दिन वह सारे आभूषण उतार कर राजभवन के पास गली में घूमने लगा। उसने वहाँ अछूत जाति के लोगों की एक टोली को अपने संगीत वाद्य बजाते हुए देखा। टोली के मुखिया, एक वृद्ध ने कीर के वर्तमान राजा को देख कर पहचान लिया और उसे पुराने नाम से सम्बोधित करके बोला- 'मेरे पुराने सम्बन्धी कटंज! तुम अब कहाँ हो? आज तुमसे मिल कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। क्या यहाँ के राजा ने तुम्हारी संगीत-दक्षता के कारण तुम्हें नौकरी दे दी है?'

"राजा ने उस वृद्ध के शब्दों की ओर ध्यान नहीं दिया और तुरन्त राजभवन के अन्तरंग कक्ष में चला गया। खिड़की में खड़ी हुई राजभवन की स्त्रियों और अनुचर गणों ने यह सब सुना और उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ कि उनका राजा जन्म से चाण्डाल था। राजा का चेहरा पीत-वर्ण हो गया।

"स्त्रियों और सेवकों ने मन्त्रियों को बताया- 'यह पृथ्वीपति, हमारा राजा, चाण्डालों की सर्वाधिक निम्न जाति का है। अब हम क्या करें?'

"अब स्त्रियाँ, अनुचर और मन्त्री गण उससे बच कर दूर खड़े हो गये। वे उसे छूते नहीं थे। सभी के द्वारा वह तिरस्कृत किया गया। वे परस्पर कहने लगे कि अग्नि में स्वयं को जीवित भस्म करने के अतिरिक्त अन्य किसी

तप से दीर्घ काल तक चाण्डाल के साथ रहने का पाप नहीं धुल सकता। परिणामतः सारे नागरिक, बच्चे तक एक विशाल अग्नि के कुण्ड में गिर गये। इस भयंकर त्रासदी को देख कर चाण्डाल राजा गवल के हृदय पर बड़ा प्रभाव हुआ। वह अत्यन्त पीड़ित हुआ।

"राजा अपने मन में सोचने लगा- 'मेरे नागरिक मेरे संसर्ग के कारण लपटों में नष्ट हो गये। फिर मेरे जीवन से क्या लाभ? मैं भी अग्नि की लपटों में नष्ट हो जाऊँ।'

"उसने अपने लिए एक चिता तैयार करवायी और उसमें अपने शरीर को चढ़ा दिया। जब उसने लपटों के मध्य देह को रखा, तो कष्ट और वेदनापूर्ण अनुभव ने जल में खड़े हुए गाधि को उसके दिवास्वप्न ने जगा दिया। उसका हृदय धड़कने लगा और शरीर काँपने लगा। कुछ समय पश्चात् उसका चित्त शुद्ध हुआ। वह माया के प्रभाव से मुक्त हो गया। उसका चित्त बिलकुल शान्त था। वह सरोवर के किनारे लौट कर चिन्तन करने लगा कि वह क्या था? क्या देखा और राज्य में उसने क्या किया?

"तब गाधि ने मन में सोचा- 'मैं वही गाधि हूँ और जल में स्नान कर रहा हूँ। जो-कुछ मैंने देखा, वह बिलकुल आश्चर्यजनक है। मैं तो अविवाहित हूँ और पत्नी के स्वरूप को भी नहीं जानता। मैं दाम्पत्य प्रेम से अपरिचित हूँ।' गाधि इन विचारों पर मनन करता हुआ कुछ दिन अपनी कुटिया में ही रहा।

"कुछ समय बाद उसे अपने मकान पर अतिथि-रूप में एक ब्राह्मण का आतिथ्य करने का संयोग हुआ। फलों और मधु के भोजन से ब्राह्मण अति-सन्तुष्ट हुआ। दोनों ने सन्ध्या-समय नित्य कर्म किये। सूर्यास्त होने पर वे अपने-अपने आसनों पर बैठे हुए विभिन्न विषयों पर वार्तालाप करने लगे और आत्मज्ञान की कथाएँ सुनीं। तब गाधि ने बातचीत के मध्य पूछा- 'श्रीमान्! आप पतले और दुर्बल क्यों दिखायी दे रहे हैं?'

"अतिथि ने उत्तर दिया- 'मैं महीना-भर प्रसिद्ध कीर नगरी में रहा। वहाँ मुझे एक व्यक्ति मिला, जिसने निम्नांकित घटना सुनायी :

"'उस व्यक्ति ने कहा- "इस देश में एक राजा ने आठ वर्ष राज्य किया। फिर लोगों को पता चला कि वह निकृष्टतम (श्वानभक्षी) चाण्डाल जाति का था। परिणाम-स्वरूप सारे ब्राह्मण एवं अन्य जन एक अग्नि-कुण्ड में जल कर भस्म हो गये और राजा ने भी वैसा ही किया।' यह समाचार सुन कर मैंने वह स्थान छोड़ दिया और अपने पापों का प्रक्षालन करने हेतु प्रयाग की यात्रा पर चला गया। वहाँ मैंने तपस्या और चान्द्रायण व्रत किया। इस कारण मैं पतला दुबला और दुर्बल हो गया हूँ।'

"इस वर्णन को सुन कर गाधि अति आश्चर्यचकित हुए। वह मन में सोचने लगे-'जो-कुछ मैंने अपने सम्बन्धियों के मध्य हुई अपनी मृत्यु के विषय में देखा, वह तो निःसन्देह मेरे मन की भ्रान्ति थी; परन्तु चाण्डाल बन जाने वाला मेरे स्वप्न का उत्तरार्ध भाग तो चाण्डाल नगर में प्रवेश करने वाले ब्राह्मण के चान्द्रायण व्रत से सत्य प्रमाणित होता है। अतएव मुझे तुरन्त भूटान जा कर चाण्डाल का पूरा विवरण जानना चाहिए।'

"अतः चाण्डाल के रूप में पूर्व-जन्म की घटनाओं की सत्यता की स्वयं जाँच करने हेतु वह यात्रा पर निकल पड़ा और स्वप्न में देखे हुए भूटान देश में प्रवेश किया। उसने अपना जन्म-स्थान, चाण्डालों की बस्ती देखी। चाण्डालों ने उसे कटंज और उसके जीवन का विस्तृत विवरण दिया।

"वह और भी आगे कीर देश में गया जहाँ उसने महल देखा और वहाँ के लोगों से अपने जीवन में घटित घटनाएँ सुनीं। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह मन में सोचने लगा-'क्या यह भगवान् विष्णु की माया है? अब मुझे माया की प्रकृति और उसकी क्रियाएँ पूर्णरूपेण स्पष्ट हो गयी हैं। माया वास्तव में बड़ी रहस्यमयी है।'

"वह तुरन्त पर्वत की गुफा में गया और भगवान् हरि को प्रसन्न करने हेतु एक वर्ष तक कठोर तपस्या की। वह थोड़े से जल मात्र पर रहा। भगवान् विष्णु उसके समक्ष प्रकट हो कर बोले- 'हे गाधि ! तूने माया की महिमा और उसके यथार्थ स्वरूप को भली प्रकार से देख लिया है। तूने माया द्वारा फैलाये हुए भ्रान्तिपूर्ण जाल को समझ लिया है। अब तुम और अधिक क्या चाहते हो? तुम यहाँ कठोर तपस्या क्यों कर रहे हो ?'

"गाधि ने भगवान् को दण्डवत् प्रणाम किया; उनकी स्तुति की और बोला- 'हे भगवान् ! मैंने भली प्रकार माया की प्रकृति समझ ली है, फिर भी मैं माया की प्रच्छन्न आन्तरिक स्थिति से अनभिज्ञ हूँ। हे भगवान्! यह कैसे होता है कि वह दृश्य जागृत अवस्था में ही दृश्यमान् रहते हैं? मैंने समझा कि जब मैं जल में खड़ा था, क्षण-भर के लिए मैंने मिथ्या स्वप्न की भाँति कुछ देखा होगा, परन्तु वह सब मेरी बाहरी इन्द्रियों और दृष्टि में कैसे प्रकट हो गया? चाण्डाल जाति में जन्म लेने की मेरी भ्रान्ति मेरे नेत्रों के सामने कैसे आ गयी? वह मेरी स्मृति मात्र में रह जानी चाहिए थी।'

"भगवान् विष्णु ने उत्तर दिया- 'जो कुछ बाहर दृष्टि में आता है, वह वस्तुतः मनुष्य के मन का दृश्य है। पृथ्वी, समुद्र, पर्वत और आकाश का अस्तित्व नहीं है। वे सब मन में सन्निहित हैं। इस ब्रह्माण्ड का और अन्य पदार्थों का आधार मन है। मन के सिवाय और कहीं उनका अस्तित्व नहीं है। मन की भ्रान्ति के कारण सब लोग यह सोचते हैं कि संसार सत्य है और इसलिए वे पदार्थों को भोगते हैं। जिस प्रकार बीज में फूल और फल निहित हैं, उसी प्रकार यह पृथ्वी एवं पदार्थ केवल मन में ही निहित हैं। सारी सृष्टि मन में ही सन्निहित है। वर्तमान में वस्तुओं का दीखना, अविद्यमान भूतकाल और अदृश्य भविष्य के विचार-ये सब मन के कृत्य हैं, जैसे बर्तनों का बनाना और नहीं बनाना, दोनों कुम्हार के कृत्य हैं।

'जीवन का नाटक एक समय में मात्र आंशिक दृश्य दिखाता है। मन की परिवर्तनशील स्थिति में चाण्डाल का एक दृश्य प्रस्तुत करना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है, जब कि उसमें उतनी ही सरलता से अपने भण्डार में से अनन्त रूप प्रकट करने की क्षमता है। तुम्हें आश्चर्य क्यों होता है, हे गाधि ! यदि तुम्हारे मन, जिसमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकट करने की क्षमता है, ने तुम्हारे समक्ष एक चाण्डाल के जीवन को प्रस्तुत कर दिया जो पूर्ण का एक तुच्छ अंश मात्र है।

'मन के संस्कार के कारण ही तुम ऐसा सोचने लगे थे कि तुम चाण्डाल थे। चित्त की एकाग्रता से तुम्हारे मन का विचार चाण्डाल के जीवन में प्रतिबिम्बित हो गया है। वह प्रतिबिम्ब ब्राह्मण अतिथि ने ग्रहण कर लिया। कौवे और फल की कथा की भाँति, भूटान और कीर देश में रहने वालों के मनों में चाण्डाल के जीवन का विचार प्रतिबिम्बित हुआ। प्रतिबिम्ब सभी के मनों में यथार्थ प्रतीत होने लगा। ये सब मन की कल्पना का प्रपंच था। कुछ भी सत्य नहीं था। सब तुम्हारे मन की कल्पना की उड़ान थी। जो-कुछ तुमने सुना और देखा, तुम्हारी कल्पना का जाल मात्र था। आशा और वासना से भ्रमित मन, स्वप्न की भाँति पदार्थों को देखने लगता है मानो वे उसके सामने विद्यमान हैं। न वहाँ कोई मेहमान था, न नगर; न कोई भूटानी थे, न कीरी। यह सब दिवा स्वप्न था। जो-कुछ तुमने अपने चित्त की दृष्टि से देखा, वह सब मिथ्या था। सत्य यह है कि एक बार भूटान जाते हुए तुम इस पर्वत की गुफा में ठहरे थे। लम्बी यात्रा के कारण तुम्हें प्रगाढ़ निद्रा आ गयी। तुमने चाण्डाल, भूटान और कीर देश का स्वप्न देखा, जिसने जल में उपासना के समय सब दिखाया। यह सब तुम्हारे मन की भ्रान्ति थी। मन की अभिव्यक्तियाँ वास्तव में आश्चर्यजनक हैं। विभिन्न जन सृष्टि के स्वप्न को अनेक रूपों में देखते हैं जैसे एक ही प्रकार के खेल से लड़के विभिन्न रूपों में अपना मनोरंजन करते हैं।

'प्रायः ऐसा होता है कि कौवे और नारियल के फल की कथा की भाँति एक ही समय में कई घटनाएँ घटित होती हैं। नारियल के पेड़ पर फल बहुत भारी होता है और वृक्ष में दृढ़ता से लगा रहता है, जिससे अचानक किसी के सिर पर न गिर पड़े। ऐसे वृक्ष के नीचे एक मनुष्य एक नारियल के गुच्छे पर दृष्टि लगाये बैठा था। उसी समय एक कौवा उड़ कर गुच्छे पर जा बैठा और एक नारियल गिर पड़ा। मनुष्य बोला- "कौने के पंजे बहुत मजबूत हैं। फल को तोड़ने के लिए एक तीक्ष्ण औजार की आवश्यकता पड़ती है। पर कौवे ने इसे तोड़ दिया।" सत्य यह था कि फल गिरने ही वाला था, कौवा केवल आ कर उस पर बैठा और वह गिर गया। यह एक आकस्मिक संयोग था।

'उसी प्रकार चाण्डाल का विचार सारे भूटानी, कीर और तुम्हारे मन में एक-साथ ही आया, क्योंकि बहुत से लोग एक ही विचार के होते हैं, भले ही वह गलत हो। यह सत्य है कि गाँव की सीमा पर जो मकान तुमने खण्डहर हालत में देखा, वह एक चाण्डाल ने बनाया था। पर तुम्हारा यह विचार गलत था कि तुमने वह मकान बनाया। यहाँ तुम भूल पर हो।

"अज्ञानी जन-जिनमें 'मैं', 'तुम', 'वह', 'मेरा', 'तेरा', 'यह' और 'वह' के भेद-भाव होते हैं—को ही भ्रम, दुःख और कष्ट होते हैं। जो लोग असीम, सर्वव्यापी आत्मा को ही सर्वत्र देखते हैं और जिन्होंने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है कि यह सृष्टि ब्रह्म के सिवाय कुछ नहीं है, वे सदा आनन्दित एवं शान्त रहते हैं। उन्हें पदार्थों की इच्छा नहीं होती। उन्होंने अज्ञान का नाश कर दिया है। तुम अब तक मानसिक भ्रान्ति के प्रभाव में हो। तुमने पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं किया है। मोह एक रहस्यमय चक्र है। मन इस चक्र के (पहिये) की धुरी है। विवेक और ज्ञान के द्वारा इस मन का नाश कर दो, तब तुम्हें माया नहीं सतायेगी। इस पहाड़ी की गुफा में जा कर दस वर्ष तक प्रबल तप और ध्यान करो। इस अवधि के अन्त में तुम्हें ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान हो जायेगा।'

"यह कह कर विष्णु भगवान् गाधि की दृष्टि से ओझल हो गये।

“गाधि ने दस वर्ष तक तपस्या की। उसने अपनी सारी आकांक्षाओं, आसक्तियों तथा भीषण भ्रम को त्याग दिया और अन्त में आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया। वह शाश्वत सुख के परम पद पर पहुँच गया जो भय, कष्ट और ऐन्द्रिक पदार्थों की कामना से मुक्त था। वह जीवन्मुक्त अथवा मुक्त साधु बन गया।"

उद्दालक की कथा

वसिष्ठ मुनि बोले- "हे राम! मुनि उद्दालक की भाँति पंचभूतों पर विजय पा कर, देह और संसार के विचार से मुक्त हो जाओ, आत्मा की खोज प्रारम्भ करो। सभी के मूल कारण पर गहनता से विचार करो और लोकातीत दिव्य प्रकाश से अपने चित को आलोकित होने दो।” श्री राम ने वसिष्ठ जी से कहा- "हे श्रद्धेय गुरु ! कृपया मुझे बताइए कि उद्दालक मुनि ने किस प्रकार पंचभूतों पर विजय पा कर अद्वैत-स्थिति प्राप्त की ?"

वसिष्ठ मुनि बोले- 'अब मैं तुम्हें उसकी कथा सुनाऊँगा। वह बड़ी मनोरंजक और प्रेरणास्पद होगी। आत्मा की खोज द्वारा वह अनिर्वचनीय भव्यता युक्त निर्मल ब्रह्म-पद पर पहुँच गये। यह महात्मा गन्धमादन पहाड़ियों पर रहता था जहाँ बहुत सुन्दर दृश्यावली थी। उसने कठोर तपस्या की, धर्मग्रन्थों का अध्ययन किया और वह अत्यन्त श्रद्धाभक्तिपूर्वक नियमित रूप से अपने नित्य कर्म करता था। उसके हृदय में विवेक उदय हुआ। वह अपने मन में इस प्रकार सोचने लगा :

'मैं जन्म-मरण से कब मुक्त होऊँगा? कब मुझे अपने संकल्पों से तथा आकर्षण-विकर्षणों की दो धाराओं से छुटकारा मिलेगा? कब मुझे पूर्ण निर्विकल्प समाधि का आनन्द प्राप्त होगा और मैं शान्तिपूर्वक अपने निज-स्वरूप में सदैव स्थित हो जाऊँगा? मैं कब वासना से पूर्णतया मुक्ति पाऊँगा? कब ऐन्द्रिक विषयों की कामना समाप्त होगी? कब मैं कमल-पत्र पर ओस की बूँद के समान अनासक्त बनूँगा? कब मेरे गहन ध्यानस्थ होने की स्थिति में जंगल की छोटी चिड़ियाँ मेरे बालों की जटाओं में घास के अपने घोसले बनायेंगी?'

"पद्मासन में बैठे हुए उद्दालक परम तत्त्व पर चिन्तन करने लगे। वह अपने मन पर नियन्त्रण नहीं कर सके। उनका मन बन्दर की भाँति एक विषय से दूसरे विषय पर दौड़ने लगा। वह इस प्रकार सोच कर अपने मन से कहने लगे- 'हे मूर्ख मन! तू नाशवान् पदार्थों की ओर क्यों दौड़ता है? तू इनसे लेशमात्र भी सुख प्राप्त नहीं कर सकता। तू स्वार्थपरक कृत्य क्यों करता है? ये कृत्य अत्यधिक कष्ट उत्पन्न करते हैं। शान्तिपूर्वक परम सत्ता में विश्राम करो। तुम्हें शाश्वत सुख प्राप्त होगा। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के पीछे तुम क्यों भागते हो? वासनाएँ तुम्हें बाँधने के लिए बुने हुए जाल हैं। हे नासमझ मन! हिरण की भाँति शब्द द्वारा, हाथी की भाँति स्पर्श से, पतंगे की भाँति रूप से, मछली की भाँति रस से और मधुमक्खी की तरह गन्ध से मृत्यु को मत प्राप्त हो। हिरण, हाथी, पतंगा, मछली और शहद की मुधमक्खी में से प्रत्येक एक इन्द्रिय मात्र की तृप्ति के प्रति आसक्ति होने के कारण मरते हैं; परन्तु तुम पाँचों इन्द्रियों को तुष्ट करने की आकांक्षा के द्वारा और अधिक खतरे में हो। पाँचों इन्द्रियों द्वारा सामूहिक रूप से सताये जाते हुए तुम परम शान्ति का सुख कैसे प्राप्त कर सकते हो? निश्चय ही तुम्हारा दुर्भाग्य है! तुमने अपने को इच्छाओं के जाल में फँसा रखा है, जिस प्रकार रेशम का कीट अपनी ही लार से निकले हुए धागे से बने जाल में अपने को फैसा। लेता है। समस्त वासनाओं से अपने को मुक्त करो। तब तुम बन्धन से छूटोगे।

"मैंने सिर से पाँव तक अपने शरीर के प्रत्येक अणु का विश्लेषण कर लिया है। उसके किसी भी भाग में मुझे 'मैं' कहलाने वाली वस्तु नहीं मिली। केवल 'ब्रह्म' अथवा परम सत्ता सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। उसका न नाम है न रूप। वह बिना रंग का और निर्गुण है। न वह लम्बा है न छोटा, न लघु है न बृहद्। मैं स्वयं ही वह सर्वव्यापी आत्मा हूँ।"

'हे मन! तुमने सब प्रकार के भेद-भाव उत्पन्न कर दिये हैं। तुम ही सारे कष्टों, चिन्ताओं और विपत्तियों का कारण हो। मैं विवेक एवं 'मैं कौन हूँ" के अनुसन्धान द्वारा तुम्हें शीघ्र ही नष्ट कर दूँगा।

"देह, मन, प्राण अथवा इन्द्रियों के लिए 'मैं' कैसे प्रयुक्त किया जा सकता है? किस प्रकार 'मैं' को मांस और अस्थियों से निर्मित ढाँचे अथवा नेत्र, कान, नाक अथवा जिह्वा के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है? 'मैं' तो सर्वव्यापी, अमर, अविभाज्य और स्वयं प्रकाशमान है। मैं दीर्घ काल तक तुम्हारे द्वारा ठगा जाता रहा। मेरे आत्मा-रूपी रत्न का अपहरण करने वाले चोर तुम हो। अब मैं तुम्हारा विश्वास नहीं करूँगा। तुमसे और शरीर से मेरा कोई नाता नहीं है। तुम से, शरीर से और इन्द्रियों से मेरा सम्बन्ध क्षणिक है।

'हे मन! तुम अपने मूल स्थान को चले जाओ। व्यर्थ सांसारिक इच्छाओं के वन में भ्रमण मत करो। समझदार बन कर उस शाश्वत सुख की स्थिति में चले जाओ, जहाँ से लौटना नहीं पड़ता।

"मैं अब शान्त हूँ। मेरा हृदय आनन्द से परिपूर्ण है। अब मैं अपने मन, शरीर और इन्द्रियों के बन्धन से मुक्त हूँ। सभी पदार्थों की एकता दृश्यमान है। मैं निर्भय हूँ। मैं अपने-आपको सभी में, सर्वकाल और सर्वत्र, सब-कुछ अनुभव करता हूँ। मुझे समत्व एवं समदृष्टि प्राप्त हो गयी है। मैं अपनी आत्मा की महिमा अनुभव कर रहा हूँ। मैं अपने में सन्तुष्ट हूँ। अपनी आत्मा में आनन्दित हूँ।'

"फिर उद्दालक अध-खुले नेत्रों से पद्मासन लगा कर ध्यानमग्न हो गये। वह समुचित रूप से, उच्च स्वर से प्रणव अर्थात् ॐ का उच्चारण करने लगे-ऐसे उच्च स्वर में, जो घण्टे की आवाज की भाँति गूँज रहा था। प्रणव में

साढ़े तीन मात्राएँ होती हैं। जब ॐ के प्रथम अंश अकार का उच्चारण किया, तो रेचक अर्थात् प्राण को बाहर छोड़ने की क्रिया हुई। उनके हृदय की अभि सारे शरीर में व्याप्त हो कर उसे जलाने लगी। यह पवित्र एकाक्षर प्रणव-उच्चारण द्वारा योगाभ्यास का प्रथम चरण था। यह प्रणवयोग की प्रथम स्थिति है। उन्होंने रेचक की इस स्थिति को हठयोग के किसी अभ्यास से प्राप्त नहीं किया। दूसरे चरण अर्थात् प्रणव के उकार में कुम्भक (श्वास रोकना) हुआ। देह में जो अग्नि प्रदीप्त हुई थी, अब वह क्षण-भर में बिजली की चमक की भाँति विलुप्त हो गयी। शरीर श्वेत भस्म की तरह, बर्फ के समान श्वेत-वर्ण हो गया। यह प्रणवयोग का द्वितीय चरण है। उन्होंने यह स्थिति हठयोग द्वारा प्राप्त नहीं की। फिर तृतीय चरण में-प्रणव के 'म' कार में पूरक (श्वास लेना) घटित हुआ। अब उद्दालक को पूर्ण विश्राम का आनन्द अनुभव हुआ। यह प्रणवयोग का तृतीय चरण है। उद्दालक का शरीर विष्णु के स्वरूप की भाँति ज्योतिर्मय हो गया।

"उन्होंने प्राणायाम का अभ्यास करके प्राण और अपान पर नियन्त्रण कर लिया। प्राण के बहिर्गमन को रोकने हेतु देह के नवद्वारों को बन्द कर दिया। तब बड़ी कठिनाई से उन्होंने इन्द्रियों को अपने विषयों की ओर जाने से रोका। अपने नियन्त्रित मन को उन्होंने हृदय-गुहा में बन्द कर दिया। कठोर संघर्ष द्वारा उन्होंने अपने विचारों को नष्ट किया।

"स्वतः ही उनके मन में संशय के समूह बारम्बार उठने लगे। जिस प्रकार एक योद्धा शत्रु का विनाश करता है, ऐसे ही उन्होंने साहसपूर्वक अपनी बुद्धि-रूपी तलवार से उन संशयों को नष्ट किया। तत्पश्चात् उन्होंने विवेक के द्वारा मानसिक अन्धकार को नष्ट किया। तब उन्हें अपने समक्ष एक सुन्दर पुंज दिखायी दिया। इस स्थिति को पा करके वह निद्रालु से हो गये। उन्होंने निद्रा की स्थिति का निराकरण किया। फिर उन्होंने नीलाकाश का विस्तार देखा। इतने में मोह आ गया। उसे भी सफलतापूर्वक छिन्न-भिन्न कर दिया। अन्धकार, प्रकाश, निद्रा, आकाश और मोह-सभी स्थितियों को पार करके अन्त में उन्होंने निर्विकल्प समाधि की स्थिति को प्राप्त कर लिया, जिसका वर्णन किसी भाषा के द्वारा नहीं किया जा सकता। सभी दृश्यमान पदार्थ अदृश्य हो गये। वह एक अमृत-सागर में निमग्न हो गये। उन्होंने अनिर्वचनीय भव्य ब्रह्म-पद को प्राप्त कर लिया। सब प्रकार के कष्टों से वह मुक्त हो गये। एक हंस की भाँति वह आनन्द के सागर में तैरने लगे।

"छह महीने पश्चात् उद्दालक समाधि से जागे। सिद्ध, देवता और स्वर्ग की अप्सराएँ चारों ओर से घेर कर उन्हें आकृष्ट करने लगे। देवराज इन्द्र ने उन्हें देवलोक प्रस्तुत किया। उद्दालक ने स्वीकार नहीं किया।

"देवता लोग बोले- 'हे सम्माननीय महात्मन्! हम लोग आपका हार्दिक अभिनन्दन करने हेतु प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस दिव्य रथ पर सवार हो जाइए। यह आपको देवलोक ले जायेगा। स्वर्ग सुख का अन्तिम स्थान है, जहाँ आपकी इच्छाओं की पूर्ण तृप्ति होगी। यहाँ दिव्य अप्सराओं को देखो। वे पंखे और पुष्पमालाएँ लिये आपकी सेवा में खड़ी हैं। स्वर्ग के सुख के समान और कोई सुख नहीं है। इस कल्प की समाप्ति तक आप स्वर्गीय सुख को भोग सकते हैं। इन स्वर्गीय सुखों को भोगने के लिए ही आपकी तपस्या फलित हुई है।'

"परन्तु उद्दालक देवताओं द्वारा प्रस्तुत प्रलोभनों तथा स्वर्ग की अप्सराओं के कुटिल हाव-भावों से किंचित् भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने समुचित मानपूर्वक व्यवहार करते हुए अनुरोध किया कि वे शान्तिपूर्वक चले जायें। देवताओं ने समझ लिया कि अधिक ठहरना व्यर्थ होगा, क्योंकि उद्दालक उनके आकर्षणों से किंचित् मात्र भी नहीं डिगे। अतएव वे अपने दिव्य स्थान को लौट गये।

"चाहे सन्त निर्विकल्प समाधि की आनन्दमयी स्थिति (परम सत्ता के साथ योग) में क्षण-भर रहे अथवा सहस्र वर्ष तक रहे, उसके पश्चात् वह पुनर्जन्म के कारक ऐन्द्रिक भोगों की कभी कामना नहीं करेगा।

"उद्दालक विन्ध्य तथा हिमालय क्षेत्र की घाटियों में, वनों व जंगलों में स्वतन्त्रतापूर्वक भ्रमण करते रहे और गहन समाधि में दिन, महीने तथा वर्ष व्यतीत कर दिये। पूर्ण शान्ति की स्थिति प्राप्त करके वह जीवन्मुक्त हो गये। वह दुःख, संशय और बारम्बार जन्म-मरण के कष्ट से मुक्त हो गये।

"निर्विकल्प समाधि के दीर्घकालीन अभ्यास से उद्दालक ने अपने मन को परम चेतना अथवा चित्त-सामान्य में विलीन करके सत्त्व-सामान्य प्राप्त कर लिया।"

श्री राम बोले- "हे सम्माननीय गुरु ! सत्त्व-सामान्य क्या है? कृपया इस बिन्दु पर प्रकाश डालें।"

वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया - "संकल्पों अथवा विचारों के नष्ट होने पर मन शुद्ध चैतन्य की प्रकृति का हो जाता है। यह चैतन्य ही सत्त्व-सामान्य है। सत्त्व-सामान्य वैश्विक अस्तित्व है। यह तुरीयातीत की स्थिति है। जिस प्रकार कपूर अग्नि में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार मन शुद्ध चैतन्य में विलीन हो जाता है तथा बाहरी व भीतरी पदार्थ और समस्त दृश्यमान् जगत् अदृश्य हो जाते हैं। यह सत्त्व-सामान्य है। ज्ञानी अथवा जीवन्मुक्त का लोकातीत अनुभव ही सत्त्व-सामान्य है। पदार्थों के प्रकट होने पर एक सन्त उसी प्रकार अपने-आपको स्वरूप में अन्तर्निहित कर लेता है, जिस प्रकार कछुआ अपने सिर और अंगों को समेट लेता है। उसे पदार्थों का कोई विचार नहीं होता। उनका उस पर किंचित् भी प्रभाव नहीं होता। यह है सत्त्व-सामान्य।

"ज्ञान और विवेक द्वारा निर्विकल्प समाधि में स्थित हुआ जीवन्मुक्त ही सत्त्व-सामान्य का आनन्द अनुभव करता है, अज्ञानी नहीं।

"दीर्घ काल के पश्चात्, उद्दालक ने पृथ्वी पर अपने भौतिक शरीर को त्याग कर श्री विदेहमुक्त होने के विषय में सोचा। वह पद्मासन में बैठे। अर्ध खुले नेत्रों से उन्होंने नवद्वारों को बन्द करके इन्द्रियों पर नियन्त्रण किया। उन्होंने अपने सिर, गर्दन और धड़ को सीधे रख कर प्राणों को रोका। फिर उन्होंने अपनी जिह्वा के कोने को तालु पर लगा कर खेचरी मुद्रा की। दाँतों को भींच लिया। श्वास बिलकुल रुक गया। उनकी मुखाकृति शान्त और निर्मल थी। उन्हें एकत्व का परम अनुभव हुआ। उन्होंने स्वयं को ब्रह्मानन्द-सागर में निमग्न कर दिया। उनका मुख ताजे कमल के समान खिल रहा था। वह ज्योतियों की परम ज्योति के साथ एकाकार हो गये और विदेहमुक्ति प्राप्त कर ली।

"जो निरन्तर आत्मा की खोज के द्वारा निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करते हैं, वे शाश्वत ब्राह्मिक सुख को भोगेंगे और अमरता प्राप्त करेंगे। जब मनुष्य को यह अनुभव प्राप्त हो जाता है, तो पदार्थों के लिए सारी वासनाएँ बिलकुल समाप्त हो जायेंगी।"

भास और विलास की कथा

वसिष्ठ जी बोले- "हे साहसी राम! जो जन ध्यानाभ्यास करके आत्मा अर्थात् परम सत्ता में आनन्द मग्न रहते हैं, वे कष्ट, दुःख, विपत्तियों एवं चिन्ताओं से मुक्त रहते हैं।

"जीव अथवा वैयक्तिक आत्मा एक वृषभ के समान है। वह संसार-रूपी गहन वन में लक्ष्यहीन भ्रमण करता रहता है। वह वासनाओं की दृढ़ रस्सी से जकड़ा रहता है। कर्म-रूपी कोड़ों से मार खाता है। रोग-रूपी मक्खियों से काटा जा कर कष्ट पाता है। वह सांसारिक कष्टों के भारी बोझ से दबा कराहता रहता है। उसका शरीर

निरन्तर आगे-पीछे हलचल के कारण जख्मी-सा हो जाता है। अज्ञानता के कारण वह असंख्य जन्मों के गहन कूप में गिर गया है।

"जिज्ञासु को चाहिए कि वह मन का नाश करके सीधे अन्तर्दृष्टि से अपनी अमर आत्मा को जाने। तभी वह अहं-भाव और स्वार्थपरता से छुटकारा पा सकता है। उसे निरन्तर सन्त-महात्माओं तथा जीवन्मुक्तों का संसर्ग करके आत्मज्ञान-प्राप्ति के उपाय खोजने चाहिए।

"शुद्ध एवं भली प्रकार अनुशासित मन ही आत्मज्ञान-प्राप्ति का निश्चित साधन है। यदि मन आत्मा में लीन हो जाये, तो तुरीय अर्थात् ब्राह्मिक चेतना की स्थिति का आनन्द प्राप्त होगा।

"यदि आत्मिक खोज आरम्भ की जाये, तो मन शनैः-शनैः पवित्रता के उच्च स्तर को प्राप्त कर लेगा। मनुष्य को उच्चतर मन के द्वारा निम्नतर मन का नाश करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए। तभी इस भीषण संसार के सारे कष्टों का अन्त होगा। जब मन का नाश और निम्न अहं का विनाश हो जायेगा, तब आत्मा का प्रकाश उदय होगा और आत्मा का अमर सुख उत्पन्न होगा।

"हे वीर राम! इस अनुभव के दृष्टान्त-रूप में तुम्हें एक प्राचीन कथा सुनाता हूँ, जिसमें भास और विलास दो भाइयों का वार्तालाप है।

"भास और विलास नामक दो साधु सह्य पर्वत स्थित अत्रि ऋषि के आश्रम में रहते थे। वे अत्रि ऋषि के दो पुत्र थे। वे पुष्प और उनकी सुगन्धि की भाँति पारस्परिक स्नेहपूर्वक रहते थे, मानो वे दो शरीरों में एक ही आत्मा और मन हों। वे दोनों एक-दूसरे से इस प्रकार संयुक्त थे, मानो एक वृक्ष की दो प्रशाखाएँ हों।

"कालान्तर में वृद्ध माता-पिता की मृत्यु हो गयी। भाइयों ने दाह-संस्कार की क्रियाएँ सम्पन्न कीं। अपने माता-पिता के देहावसान पर वे अत्यन्त दुःखी हुए और प्रबलता से अश्रु-प्रवाह किया। अब वे एक-दूसरे से अलग हो कर विपरीत दिशाओं में चले गये। एकान्त जंगल में रह कर कठोर तपस्या में वे अपना समय व्यतीत करने लगे। उन्होंने सारी आकांक्षाएँ नष्ट कर दीं। उनके शरीर कृश (दुर्बल) हो गये, परन्तु उन्हें सत्य ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। फिर वे एक बार मिले।

"विलास ने कहा- 'हे भास। मेरे प्रिय भाई! मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। मेरे हृदय के अन्तस्तल में तेरे लिए स्थान है। तू मेरा जीवन ही है। भाई! बताओ, मुझसे अलग होने के पश्चात् तुमने कैसे और कहाँ समय व्यतीत किया? क्या तुम्हें शान्ति प्राप्त हुई? क्या तुमने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है? क्या तुम प्रसन्न हो ? क्या तुम मानसिक कष्टों और चिन्ताओं से मुक्त हो गये? क्या तुमने अनन्त का सुख और शाश्वत का आनन्द प्राप्त कर लिया है?'

"भास ने उत्तर दिया- 'आज तुमसे मिल कर मैं अपने को भाग्यशाली मानता हूँ। हम शान्ति की आशा कैसे कर सकते हैं, जब तक दृढ़ और गहरी जड़ों सहित वासनाओं का बीज नष्ट न हो जाये और मन का नाश न हो जाये। हम शाश्वत सुख का अनुभव कैसे कर सकते हैं, जब तक हम आत्मज्ञान प्राप्त न कर लें और जब तक हम आत्मा का साक्षात्कार न कर लें। देखो, किस प्रकार हमारे जीवन व्यर्थ के सांसारिक कार्यों में, स्वार्थपूर्ण प्रयासों में और निरर्थक गपशप में व्यतीत हो रहे हैं। शरीर मुरझाये हुए वृक्ष की भाँति नाश को प्राप्त हो जाता है। श्वेत बालों और झुरी पड़ी चर्म से वृद्धावस्था आ घेरती है। हम अलौकिक आनन्द का कैसे अनुभव कर सकते हैं, जब तक उपद्रवी कामनाएँ नष्ट न हो जायें और आशा-भय आदि समाप्त न हो जायें। हम ब्रह्म के शुद्ध आनन्द को कैसे भोग सकते हैं, जब तक हम शुद्ध बुद्धि अर्थात् विवेक-रूपी फावड़े से विभिन्न प्रकार की कामना-रूपी घास-फूस को न उखाड़ फेंकें?

"मृत्यु-रूपी चूहा जीवन-रूपी गाँठ को जड़ से काटने को सदैव संलग्न रहता है। सांसारिक जीवन-स्रोत कामनाओं और आकांक्षा-रूपी कीचड़ सहित प्रवाहित रहता है, जिसमें चिन्ताओं और परेशानियों के झाग उठते रहते हैं और पुनर्जन्मों के भँवर विद्यमान हैं। मन इन्द्रियों सहित नाचता रहता है। उसे क्षण-भर के लिए भी विश्राम नहीं।

'अज्ञान-रूपी रोग के इलाज हेतु ब्रह्मज्ञान ही निश्चित विशिष्ट उपचार है। पुनर्जन्म-रूपी गहन दुःख के लिए यह सर्वोपरि उपाय अथवा रामबाण औषधि है। जिन्होंने ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं किया है और जो अपना समस्त जीवन इन्द्रिय-भोगों में व्यर्थ गँवाते हैं, वे बारम्बार जन्म-मरण के चक्र में फँसते हैं। जिस प्रकार हवा के झोंकों से वृक्षों के सूखे पत्ते उड़ा लिये जाते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी जन मृत्यु के प्रवाह द्वारा बहा लिये जाते हैं।'

"भास की भावपूर्ण वार्ता सुन कर विलास अति-प्रसन्न हुआ। फिर दोनों भाई ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रमपूर्वक संलग्न हो गये। उन्होंने परम सत्ता पर निरन्तर और गहन ध्यान करके आत्म-साक्षात्कार किया और जीवन्मुक्त हो गये।

"कष्ट, विपत्तियाँ, चिन्ताएँ और भ्रम उन्हीं लोगों को प्रभावित करते हैं जो सांसारिक और अज्ञान की दलदल में फँसे हैं। जिन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है, वे सदैव ब्रह्म अर्थात् अनन्त का शाश्वत सुख अनुभव करते हैं।"

वसिष्ठ जी बोलते रहे- "हे वीर राम! कामनाओं के सूत्र से बँधे हुए कष्टदायक मन का नाश आत्मज्ञान से ही होगा। आकर्षणों से रहित शुद्ध चित्त वाला व्यक्ति विभिन्न प्रकार के सांसारिक कृत्य करता हुआ भी कभी बँधा नहीं होगा, इसके विपरीत आसक्ति युक्त अशुद्ध चित्त वाला व्यक्ति विभिन्न प्रकार के तप भी करे, तब भी वह सदा बंधा रहेगा। जो मनुष्य आसक्ति रहित हो कर शुद्ध मन से कर्म करता है, उसमें निरासक्ति के कारण कर्तृत्व का भाव, फलाकांक्षा तथा कर्ता-भोक्ता पन नहीं रहेगा।"

श्री राम बोले- "हे पूज्य गुरुदेव ! आकर्षण क्या है? अनाकर्षण क्या है? वह क्या आकर्षण है जो मनुष्य को बन्धन में डालता है? वह अनाकर्षण क्या है जो मुक्ति की ओर अग्रसर करता है? इस बन्धन को मैं किस प्रकार नष्ट कर सकता हूँ? इन बिन्दुओं पर प्रकाश डालिए।"

वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया- "यदि कोई यह विश्वास करता है कि यह देह स्थायी है, यदि वह देह और इसके अधिष्ठाता अथवा अन्तर्वासी अथवा अन्तर्यामी शाश्वत आत्मा में भेद नहीं कर सकता है और वह सदा शरीर के विषय में ही चिन्तन करता रहता है, तो वह आकर्षण का दास है और आकर्षण से बँधा है। यह आकर्षण है। निःसन्देह यह बन्धन में डालेगा। यह विश्वास है कि प्रत्येक वस्तु ब्रह्म अथवा आत्मा ही है और इस सृष्टि में प्रेम अथवा घृणा के लिए कुछ नहीं है, यह अनासक्ति है। यह अनासक्ति मोक्ष अर्थात् अन्तिम मुक्ति की ओर ले जायेगी।

"जीवन्मुक्त अनासक्ति से सम्पन्न होते हैं। अनासक्ति आने पर मन सांसारिक भोगों को त्याग देता है। अहं-भाव लुप्त हो जाता है और पदार्थों के लिए आसक्ति नष्ट हो जाती है। अनासक्ति की स्थिति मोक्ष की ओर अग्रसर करती है। जो अनासक्त हैं, वे न कर्म को चाहते हैं न अकर्म को। आसक्ति और आकर्षण मनुष्य को पुनर्जन्म में फँसाते हैं।

"यह आकर्षण दो प्रकार का होता है-बन्ध्य और अबन्ध्य। प्रथम प्रकार अज्ञानी से सम्बन्धित है और दूसरा उनका आभूषण है जिन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है। प्रथम पदार्थों के प्रति आसक्ति के कारण पुनर्जन्म की

ओर अग्रसर करता है और दूसरा विवेक एवं आत्मज्ञान उत्पन्न करता है। भगवान् विष्णु तथा सिद्ध गण अबन्ध्य आकर्षण द्वारा विभिन्न कर्मों में रत रह कर इस पृथ्वी का संरक्षण करते हैं।

"जीवन्मुक्त विश्व-कल्याण के लिए अनेक कृत्य करते हुए भी आसक्त नहीं होता। यद्यपि वह पदार्थों से संसर्ग रखता है, किन्तु वह नितान्त उदासीन रहता है। उसका पदार्थों में कोई आकर्षण नहीं है। उसका चित्त सदैव परम सत्ता पर स्थिर रहता है। वह इस संसार को मिथ्या मानता है। वह न भावी आशाओं में रहता है, न वर्तमान स्थिति का भरोसा करता है और न भूतकाल की स्मृतियों का आनन्द लेता है। सुप्तावस्था में, परम ज्योति के प्रकाश में वह जागता है। जागृत अवस्था में वह निर्विकल्प समाधि की गहन निद्रा रहित निद्रा में मग्न रहता है। वह कर्म करते हुए भी ऐसे रहता है मानो कुछ नहीं करता। वह कर्तापन के विश्वास की भूल किये बिना ही कर्म करता है। वह न किसी बात पर आनन्दित होता है न दुःख मानता है : बालक के साथ बालक जैसा व्यवहार करता है और वृद्धों के साथ वृद्ध बन जाता है। युवकों की संगति में वह युवक बन जाता है और ज्ञानी जनों के साथ गम्भीर हो जाता है। वह दूसरों के सुख में आनन्दित होता है और जो लोग कष्ट में हैं, उनसे सहानुभूति रखता है।

"बिना चित्त के लगाये, शरीर की क्रियाओं मात्र से वह बाहरी कृत्य करता है, जिस प्रकार पालने में लेटा हुआ बच्चा मन से बिना किसी आशय के स्वतः ही अंग-प्रत्यंग की क्रियाओं से खेलता रहता है। अन्तर्मन द्वारा बिना किसी लक्ष्य के बाहरी शरीर द्वारा की गयी क्रिया किसी कर्ता का कर्म नहीं मानी जाती और न ही वह उसे अच्छे अथवा बुरे परिणाम का भोक्ता बनाती है। वह दुःख में म्लान नहीं होता और शुभ भाग्य से हर्षित नहीं होता है। न सफलता पर गर्वित होता है न असफलता से दुःखी होता है।

"जब मन को ऐन्द्रिय-भोगों में नहीं रमने दिया जायेगा, तो वह शनैः-शनैः विनष्ट हो जायेगा। यह 'सुषुप्ति जागृत' कहलाता है। जिस प्रकार नदी समुद्र में मिलती है, उसी प्रकार वैयक्तिक आत्मा परम आत्मा में मिल जाती है। जब दृष्टि और दृश्य द्रष्टा में लीन हो जाते हैं, तो परम आत्मा का सुख अनुभव होता है। यह तुरीयावस्था है।

"जब सारी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं, प्रसारित मन का समाप्त हो जाना ही मोक्ष है। मन और उसके विचारों को मूल से नष्ट कर दो। यदि व्यक्ति को आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है, तो बन्धन कहाँ रहेगा? मुक्त महात्मा जिनके चित्त शान्त हैं और जिन्होंने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है, आकांक्षाओं से पूर्णतया मुक्त हैं। निष्कामना ही संसार-रूपी जंगल को काटने वाली कुल्हाड़ी है। निष्काम भाव सन्तोष और शान्ति- रूप वृक्ष में पुष्पों का एक गुच्छ है। कामना रहित व्यक्ति हृदय की सारी दुर्बलताओं से मुक्त रहता है। कामना रहित व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड तिनके के समान है।

"जो लोग अपने निज-स्वरूप अर्थात् आत्मा में स्थित हैं, उन्हें अपनी देहों की चेतना ही नहीं रहेगी। इस संसार के अनेकों प्रलोभनों के मध्य रह कर भी वे अपने लक्ष्य से कभी विचलित नहीं होंगे। यद्यपि मानवता के कल्याण हेतु वे विश्व में कार्यरत रहें; परन्तु उनके मन सदैव ब्रह्म में स्थित रहेंगे, जिस प्रकार स्त्री घर के कार्यों में व्यस्त रहे, तो भी उसका चित्त दूर रहने वाले उसके प्रेमी में लगा रहता है। समस्त कामनाओं के नष्ट होने पर मन के भीतर की परम शान्ति मोक्ष की ओर अग्रसर करेगी। कामना रहित मनुष्य को मोक्ष पुरस्कार-स्वरूप मिलेगा। कामना रहित लोग सुखी जीवन्मुक्त हैं। जिनके चित्त कामनाओं में रत रहते हैं, वे बद्ध हैं। विदेहमुक्त इन दोनों प्रकार के लोगों से भी बहुत उच्च हैं।

"ऐसे जीवन्मुक्त न भविष्य के लिए किसी वस्तु की कामना करेंगे और भूतकाल की वस्तुओं के विषय में सोचेंगे। वे सदैव संसार की भलाई के लिए की थी। भूतकावे प्रकृति में किसी अनहोनी घटना पर आश्चर्यचकित अथवा भयभीत असे होगे। वे कभी धुन्ध नहीं होंगे, चाहे सूर्य शीतल हो जाये अथवा चन्द्रमा तपने लगी अथवा अग्नि की लपटें नीचे की ओर जाने लगें, अथवा नदी का प्रवाह ऊपर को बहने लगे। विविध रूपीय पदार्थों वाला यह

संसार मन के चलायमान होने से प्रकट होता है, जिस प्रकार समुद्र में जल के हिलने-डुलने से असंख्य लहरें उठती हैं।"

राम बोले- "हे पूज्य गुरु! चित्त के विक्षेप का क्या कारण है और व्यक्ति उसे किस प्रकार नियन्त्रित कर सकता है? कृपया इन बिन्दुओं को मुझे समझाइए।"

वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया- "चित्त का विक्षेप तिलों में तेल, बर्फ में श्वेतता. पुष्पों में सुगन्धि और अग्नि में लपटों की भाँति चित्त से ही सम्बन्धित है। इस विश्क्षेप के नाश के दो मार्ग हैं—योग और ज्ञान। मन की वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं। उससे मन को एक पदार्थ पर स्थिर किया जाता है। ज्ञान है-आत्म-विश्लेषण और वस्तुओं की पूर्ण छानबीन। चित्त प्राणों के विचलन के सिवाय कुछ नहीं है। प्राण पर नियन्त्रण करने से चित्त पर भी नियन्त्रण हो जायेगा। यदि चित्त पर नियन्त्रण हो जाये, उसमें उठने वाले विक्षेपों को समाप्त कर लिया जाये, तो सारे कष्ट जाते रहेंगे और पुनर्जन्म का अन्त हो जायेगा।"

राम बोले-"प्राण पर नियन्त्रण कैसे हो? उसकी हलचल को कैसे रोका जाये, क्योंकि यह प्राण अत्यन्त प्रबल वेग से निरन्तर चलता है?"

वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया -"प्राण की हलचल निरन्तर और नियमित प्राणायाम के अभ्यास अर्थात् श्वास को नियन्त्रित करने से रोकी जा सकती है। योग के विद्यार्थी को योगशास्त्रों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उसे कामनाओं से रहित होना चाहिए। किसी गुरु से दीक्षा लेनी चाहिए। सन्त-महात्माओं तथा योगियों के संसर्ग में रहना चाहिए। तभी वह प्राण पर नियन्त्रण करने में सफल होगा।

"ऊर्जा अथवा प्राण नाड़ियों द्वारा फेफड़ों, धमनियों और शरीर की मांसपेशियों में भ्रमण करते हैं। यह प्राण की हलचल ही शरीर के आन्तरिक अंगों में शक्ति का सच्चार करती है। इस शक्तिवान् श्वास के स्पन्दन से हृदय में इच्छाएँ और भावनाएँ जागृत होती हैं। प्रबल प्राण की स्फुरणा से हृदय की गुहा में धड़कन और चित्त द्वारा ज्ञान उत्पान होता है। यदि प्राणिक श्वास रुक जाये, तो चित्त शान्त हो जाता है। यदि मन की क्रिया बन्द हो जाये, तो विश्व के अस्तित्व का बोध समाप्त हो जायेगा; क्योंकि जब प्रगाढ़ निद्रा में मन निष्क्रिय रहता है, तो भी संसार का कोई भान नहीं होता।

"किसी एक विषय पर ध्यानस्थ होने से भी श्वास रुक जायेगा। ध्यान के साथ पूरक और रेचक के नियमित अभ्यास से प्राणों का स्पन्दन रुक जायेगा। ॐ के उच्चारण, ॐ उच्चारण की अन्तिम ध्वनि की यथार्थ प्रकृति पर ध्यान तथा ॐ के अर्थ पर गहन चिन्तन से प्राणावरोध होगा। पर कुम्भक (श्वास रोकना) के अभ्यास से भी प्राण रुकेगा। खेचरी मुद्रा भी प्राण पर नियन्त्रण करती है। जिह्वा की नोक को मोड़ कर जब तालु के छिद्र पर ले जाते हैं, तो तालव्य छिद्र बन्द हो जाता है। तब वायु ग्रसिका के ऊपर ले जायी जाती है। इससे प्राण का स्पन्दन बन्द हो जाता है। जब संकल्पों से मुक्त हुआ मन रिक्त हो जाता है, तो प्राण रोका जा सकता है। नासिका के सिरे से बारह इंच की दूरी तक श्वास चलता है। इस स्थान को ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। इस विधि से भी प्राण को रोका जा सकता है। दृष्टि को दोनों भौंहों के मध्य केन्द्रित कर लें; इससे प्राण का स्पन्दन रुक जायेगा।

"इन अभ्यासों के द्वारा प्राण पर नियन्त्रण हो सकता है, तब मनुष्य शनैः शनैः पुनर्जन्मों से मुक्त हो जायेगा। इन पद्धतियों के अभ्यास से ही व्यक्ति दुःख से मुक्त हो कर, दिव्य आनन्द से परिपूर्ण हो कर परम सत्ता में लीन होगा। प्राण पर नियन्त्रण होने पर चित्त अत्यन्त शान्त हो जायेगा। चित्त और प्राण का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि चित्त शान्त होता है और अपने कारण अर्थात् आधार में विलीन हो जाता है, केवल ब्रह्म शेष रहता है। जिसका

चित्त सारी कामनाओं और आकांक्षाओं से मुक्त हो गया है और जिसने परम सत्ता में शाश्वत विश्राम पा लिया हो, वह सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति है।"

राम ने कहा- "हे सम्माननीय गुरु! आपने मुझे योग का मार्ग बताया, जिससे मन और प्राण को नियन्त्रित किया जाता है। अब कृपया मुझे वह विधि बतलाइए, जिससे आत्मा के पूर्ण ज्ञान अर्थात् ब्रह्मज्ञान के द्वारा मन को वश में किया जाता है।"

वसिष्ठ जी बोले-"केवल ब्रह्म का ही सर्वत्र अस्तित्व है जो आदि, मध्य और अन्त रहित है, यह दृढ़ विश्वास ही यथार्थ ज्ञान अथवा पूर्ण ज्ञान है। ब्रह्म अखिल विश्व में व्याप्त है। विश्व केवल आत्मा की प्रकृति का है। यह दृढ़ विश्वास कि विभिन्न पदार्थों की शक्तियाँ आत्मा ही हैं। आत्मज्ञान, अर्थात् आत्म-साक्षात्कार है। अज्ञानता से ही जन्म और कष्ट होते हैं। जिस प्रकार हमारी दोष युक्त दृष्टि से रस्सी में सर्प दिखायी देता है और समुचित दृष्टि उस त्रुटि को दूर कर देती है, इसी प्रकार पूर्ण ज्ञान हमें इनसे मुक्ति दिला देता है। ब्रह्मज्ञान मनुष्य में पूर्णता लाता है। 'सब-कुछ ब्रह्म ही है' यह तत्त्वज्ञान है। यह दृढ़ ज्ञान और दृष्टि कि 'विश्व ब्रह्म' ही है', , पूर्णता है। जब विश्व है, तो अस्तित्व अथवा अनस्तित्व का भाव अथवा अभाव, बन्धन या मुक्ति फिर कहाँ रही? सर्वत्र एक आत्मा को ही देखो ! अनेकता में एकता समझो। आत्मा को पहनाया। फिर वृक्ष, पर्वत, नदी, पात्र और वस्त्र के सारे भेद नष्ट हो जायेंगे। उनके साथ को संकल्प भी विलीन हो जायेंगे।

"ब्रह्म ही सब-कुछ है, ऐसा व्यापक दृष्टिकोण रखने से तुम्हें लकड़ी, पत्थर गा तुम्हारे वस्त्र में भेद नहीं प्रतीत होगा। फिर क्यों तुम यह व्यर्थ के भेद करने में अपनी सचि रखते हो ? यह समझो कि केवल ब्रह्म ही नाश रहित तत्त्व है, जिसका आरम्भ से अन्न तक अस्तित्व है। यह समझ लो कि यह ब्रह्म ही तुम्हारी आत्मा है। चिदाभास अवता वैयक्तिक आत्मा तथा सारे पदार्थ अन्ततोगत्वा ब्रह्म में विलीन होते हैं।

"हे कमलनेत्र राम! आनन्द ब्रह्म में विश्राम करो। ब्रह्म ही मन के द्वारा नाम-रुपां में अभिव्यक्त होता है, जिस प्रकार समुद्र का जल झाग, बुलबुलों, तरंगों और लहों आदि के रूप में। जो सत्यपथगामी है, जो नित्यः आत्मानुसन्धान का अभ्यास करता है, वह सांसारिक भोगों के जाल में कभी नहीं फँसेगा। वह कभी सांसारिक प्रलोभनों और ऐन्द्रिक-सुखों के द्वारा विचलित नहीं होगा। वायु के सामने चट्टान की भाँति बह अविचलित रहेगा। जो अत्यन्त विषम परिस्थितियों तथा विरोधी स्थिति में भी विचलित नहीं होते-वे ही पुरुष हैं जिन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया है। लोग शास्वत शान्ति के साम्राज्य में प्रवेश पाने के अधिकारी हैं। वे ही आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करेंगे।

वीतहव्य की कथा

"अब मैं तुम्हें एक मार्ग बताऊँगा, जो मोक्ष की ओर अग्रसर करता है। हे वीर राम! इसे पूर्ण ध्यानपूर्वक सुनो। पूर्व-काल में वीतहव्य नामक एक तपस्वी विन्ध्य पहाड़ियों में रहता था। कालान्तर में वह कर्मकाण्डीय क्रियाओं से असन्तुष्ट रहने लगा, जो मनुष्यों को भ्रान्ति में डालती हैं और जो लोगों के रोगों तथा कठिनाइयों का कारण बनी हुई हैं। उसने अग्नि को आहुति देना बन्द कर दिया। वह निर्विकल्प समाधि प्राप्त करना चाहता था। उसने पत्तों और केले के वृक्ष की डालियों से एक झोपड़ी बनायी । उसने मृगचर्म का आसन बिछाया । वह वउ्मासन लगा कर बैठ गया और अपने दोनों हाथ एड़ियों पर रखे । उसने नेत्र बन्द कर लिये । धीरे-धीरे मन को बाहरी पदार्थो से खींच कर उसे स्थिर कर लिया और अन्त में अपने हृदय में दृढ़ता से स्थित कर दिया।

"वह अपने मन में इस प्रकार विचार करने लगा कि 'मैंने अपने मन को नियन्त्रित किया; किन्तु फिर प्राण के द्वारा यह विक्षिप्त होने लगा है। वायु द्वारा उड़ाये गये सूखे पत्ते की भाँति यह बह रहा है। यह बाह्य अंगों को इस प्रकार चालित करता है, जैसे रथवान अपने घोड़ों को हाँकता है और फिर अंगों के द्वारा अपने विभिन्न विषयों की

ओर ले जाया जाता है। वह एक विषय से दूसरे विषय की ओर दौड़ता रहता है, जैसे बन्दर एक वृक्ष से दूसरे पर कूदता है। मैं इसे अपने मार्ग से रोकने की चेष्टा करता हूँ, परन्तु यह पदार्थों की ओर ही दौड़ता है। यह उत्कण्ठा और उत्सुकता से उनका अनुसरण करता है। पंच ज्ञानेन्द्रियाँ मानो चित्त के ही द्वार हैं और मैं उनका द्रष्टा मात्र हूँ। मैं मूक साक्षी हूँ।

'हे मेरी दुष्ट और हतभागी इन्द्रियो ! तुम क्यों व्यर्थ में अपने को विपत्तियों और मुसीबतों में डालती हो? तुम क्यों इतनी नासमझ हो कि अशान्त हो कर भटकती हो? मैं शुद्ध चैतन्य हूँ। मैंने मन और इन्द्रियों का संसर्ग किया, इस कारण मेरा पतन हुआ। सर्वज्ञ आत्मा नेत्रों और कानों को भली प्रकार जानता है, परन्तु ये इन्द्रियाँ अन्तरात्मा को नहीं जानतीं। ये ब्राह्मण और शूद्र, बिल्लियों और चूहे तथा नेवला-सर्प की भाँति हैं। हे मन! तुम गली के एक कुत्ते की तरह लक्ष्यहीन क्यों भटकते हो? हे विकृत बुद्धि! तुमने अहंकार के कारण इस नाशवान् शरीर को अमर आत्मा समझ रखा है। 'मैं' को शरीर और पदार्थों से संयुक्त मत करो। अहंकार की भ्रान्ति से उत्पन्न पृथकता का नाश करो। हे मन! जिस प्रकार सूर्य उदय होने पर अन्धकार विलीन हो जाता है, इसी प्रकार आत्मिक खोज से तुम तुरन्त विलीन हो जाओगे। हे मन! अब तुमने निश्चय कर लिया है कि सत्य का मार्ग अपना कर आत्मा की खोज करोगे। वर्तमान मार्ग सचमुच प्रशंसनीय है। तुम शीघ्र ही आत्मा के शाश्वत सुख को प्राप्त करोगे।'

"इस खोज के द्वारा वीतहव्य ने दृढ़ता से मन, इन्द्रियों और प्राण पर नियन्त्रण कर लिया। उसने नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि स्थिर की। उसको देह अचल हो गयी। श्वास रुक गया। फिर उसने तीन सौ वर्ष समाधि में ऐसे व्यतीत किये मानो एक क्षण था। सिंहों की दहाड़ का भयंकर शब्द और शिकारियों की चीख-चिल्लाहट भी उसे समाधि से नहीं जगा सकी। उसका शरीर बाढ़ों में आये हुए रेत के ढेर से कन्धों तक दब गया था। समाधि से जागने पर उसे विदित हुआ कि उसका शरीर रेत से दब गया है। प्राण का सुचारु संचालन नहीं था। अतएव शरीर में भी स्फुरण नहीं था। उसने चित्त के भीतर प्रवेश करके पाया कि उसने कैलास पर्वत के ढाल पर एक तपस्वी की भाँति सौ वर्ष व्यतीत कर दिये थे, और फिर सौ वर्ष विद्याधर की भाँति, देवलोक में देवेन्द्र की भांति पाँच युगों तक रहने के पश्चात शिव जी का पुत्र गणेश हुआ। दिव्य दृष्टि से वीतहव्य अपने पूर्व-जन्मों की घटनाओं को देख सका। उसे भूत, वर्तमान और भविष्य - तीनों कालों का ज्ञान था।

"वीतहव्य ने अपनी देह को रेत में से निकालना चाहा। वह अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा सूर्य के पास गया और पिंगला से कहा कि वह उसके शरीर पर संचित रेत को हटा दे। पिंगला ने बादल के रूप में विन्ध्य की गुफा में प्रवेश किया। बादल ने एक विशाल हाथी का आकार ग्रहण किया। इस हाथी ने मिट्टी और रेत को हटा दिया। पिंगला अपने मूल स्थान को चली गयी। मुनि के सूक्ष्म शरीर ने उनके शरीर में प्रवेश करके उसे जीवन्त कर दिया। मुनि ने स्नान करके सूर्य की उपासना की। फिर उसने कुछ समय नदी के किनारे पर व्यतीत किया। उसे सांसारिक पदार्थों का कोई आकर्षण नहीं था। उसमें आत्म-संयम, प्रेम, करुणा, शान्ति, दया, सन्तोष, बुद्धिमत्ता और आन्तरिक सुख था।

"वीतहव्य इस प्रकार अपने से कहने लगा- 'अब तक मैं अपनी सारी इन्द्रियों को नियन्त्रित करता रहा, अब मैं निर्विकल्प समाधि में प्रवेश करके चट्टान की भाँति अडिग रहूँगा। मैं स्वयं को सुख के सागर अर्थात् पूर्ण चैतन्य में विलीन कर दूँगा। मैं अपनी आत्मा में स्थित हो जाऊँगा। मैं ऐसा हो जाऊँगा मानो कोई प्रगाढ़ निद्रा में हो। संसार के लिए मृतक हो जाऊँगा। मुझे विश्व की कोई चेतना नहीं रहेगी। प्रगाढ़ निद्रा में रहते हुए भी इस संसार में जागृत की भाँति हो जाऊँगा। मुझे अपने स्वरूप की पूर्ण चेतना होगी। मुझमें पूर्ण जागृति रहेगी। मैं तुरीय का आनन्द अनुभव करूँगा, जहाँ विषमता नहीं है। मैं ब्रह्म के एकरूपत्व का अमृत-पान करूँगा।'

"इस प्रकार चिन्तन करके वह ध्यानस्थ हो गया। वह छह दिन और रात समाधि में रहा। उसने आत्मा के शाश्वत सुख को भोगा और जीवन्मुक्त हो गया। उसने जन्म-मृत्यु तथा सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से मुक्ति पा ली।

"अब वह विदेहमुक्ति प्राप्त करना चाहता था। वह एक पर्वत की गुफा में जा कर पद्मासन लगा कर बैठ गया और सोचने लगा- 'हे कामनाओ! मैं तुमसे विदाई लेता हूँ। मैंने तुम्हारे द्वारा भौतिक सुख भोगे। अब मैं निष्काम हो गया हूँ और शान्ति-सुख का अनुभव कर रहा हूँ। हे क्रोध ! तुमने दुष्टों से रक्षा करने में मेरी सहायता की, अब मैं तुमसे विदा लेता हूँ। अब मुझे चित्त की शान्ति प्राप्त हो गयी है। मुझे तुम्हारी सारी चालाकी विदित हो गयी है। हे विषयानन्द ! तुम्हें विदा करता हूँ। असंख्य जन्म-चक्रों में अपने कटु सुखों को भोगने हेतु तुम मुझे प्रलोभन देते रहे। इस विश्व में तुम्हारे साथ मैं पर्याप्त खेल खेल चुका। हे विषय-भोगो ! मैं तुम्हें विदा करता हूँ। तुमने दीर्घ काल तक मुझे भ्रम में रखा। अब मैं तुम्हारी पहुँच से ऊपर उठ गया हूँ। तुमने मुझे अपनी सच्चिदानन्द प्रकृति विस्मृत करा दी। हे कष्ट! तू मेरा रक्षक है। तूने मेरे नेत्र खोल दिये । तुम मेरे लिए छिपे वेश में वरदान हो। तुमने आत्मा का शाश्वत सुख प्रकट कर दिया। तुम्हारे बिना मैं जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करने की चेष्टा कभी नहीं करता । तुमने मुझे आत्मिक खोज, ध्यानाभ्यास एवं समाधि के मार्ग पर अग्रसर कर दिया। हे शरीर, मेरे पुराने एवं घनिष्ठ मित्र! मैं अब तुम्हें त्यागता हूँ। मैं तुम्हारे प्रति समुचित सम्मान अर्पण करता हूँ। यद्यपि तुमने मुझे अत्यधिक यातनाएँ दीं, फिर भी मैंने तुम्हारे सहारे से भव-सागर पार किया है। हे लोभ ! मुझे अव सन्तोष मिल गया है। अब मुझे सांसारिक लाभ नहीं चाहिए। मुझे मोक्ष-रूपी परम धन मिल गया है। मुझे सर्वोच्च लाभ प्राप्त हो गया है। मैं तुम्हें विदा करता हूँ। हे आसक्ति एवं काम ! अब मुझे अधिक मत सताओ। मैंने वैराग्य और पवित्रता प्राप्त कर ली है। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ, हे मेरी प्रिय कन्दरा ! ध्यानाभ्यास में तुम मेरी सहयोगी रही हो। जब मैं इस कोलाहलपूर्ण विश्व के शोरगुल से पूर्ण थक गया था, तो तुम्हीं मेरा एकमात्र आश्रय थीं। हे मेरी छड़ी ! थकान दूर करने के लिए तुम मेरी सर्वश्रेष्ठ मित्र थीं। मेरे वृद्ध शरीर का तुम सहारा थीं। हे मेरे प्रबल प्राणो ! अब मैं तुम्हें विदा करता हूँ। अनेक जन्मों तक तुम मेरे साथ रहे। हे मेरे शुभ कर्मो! मैं तुम्हें बारम्बार नमस्कार करता हूँ। तुम्हारी सहायता से ही मैं दुष्कर्म करने से बचा रहा और शीघ्रता से मोक्ष प्राप्त कर सका। हे बन्धुओ और मित्रो! मैं तुम सबसे अब विदा लेता हूँ। ईश्वर करे, तुम सब सुखी हो ! तुम सबको अन्तिम लक्ष्य प्राप्त हो!'

"उसने धीमे से प्रणव उच्चारण किया, जिसने समस्त ऐन्द्रिक पदार्थों और संकल्पों का निवारण कर दिया। उसने ॐ पर ध्यान लगाया। अन्धकार का लोप हुआ और प्रकाश प्रकट हुआ । उसका हृदय प्रकाशमान् हो गया। फिर वह जाग्रत-सुषुप्ति अवस्था में एक चट्टान की भाँति स्थित हो गया। उसने तुरीयावस्था प्राप्त कर ली। वह पूर्ण चैतन्य हो गया, पूर्ण सत् हो गया। उसने नास्तिकों के शून्य, ब्रह्मवादियों के परब्रह्म, सांख्य के पुरुष, योगियों के ईश, शैवों के शिव, कालवादियों के काल तथा माध्यमिकों के मध्यम की स्थिति प्राप्त कर ली।

"वह 'वह' हो गया जो सन्तों के द्वारा जाना जाता है, जो सबमें व्यापक है, जो सारी ज्योतियों को ज्योति देता है, जो एक और अनेक है, जो समस्त शास्त्रों का उपसंहार है, जो विश्व का आश्रय और आधार है। वह बीस हजार वर्ष तक उस उच्च स्थिति में रहा, प्रसन्नतापूर्वक विश्व भर में भ्रमण करता रहा। अन्त में ज्योतियों की ज्योति में विलीन हो गया और विदेहमुक्ति प्राप्त कर ली।"

६.निर्वाण-प्रकरण

मुक्ति

वसिष्ठ जी राम से बोले- "हे राम ! कोई पदार्थ एक क्षण आनन्द देता है, दूसरे क्षण कष्ट। स्वस्थावस्था में दूध आनन्द देता है; परन्तु वही दूध ज्वर, बदहजमी तथा पेचिश की स्थिति में कष्ट और उल्टी उत्पन्न करता है। यह सभी लोगों का अनुभव है। जब तुम कोई वस्तु पाने की इच्छा करते हो, तो ही वह वस्तु सुख देती है। अतएव इच्छा आनन्द का कारण हुई। भोग इच्छाओं की क्षणिक तृप्ति करता है। जब तृप्ति हो जाती है, तो वह वस्तु आनन्दप्रद नहीं रहती ।

"क्षणिक सुखों में आनन्द का अनुभव करना मूर्खता है। हे राम ! सारी इच्छाओं और विचारों का नाश कर दो। विषयों से मन का संसर्ग मत रखो। जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं है, वह बद्ध है; जिसे ब्रह्मज्ञान है, वह बन्धन से मुक्त हो जाता है। अतः हे राम! निरन्तर और गम्भीरता से ब्रह्म का चिन्तन करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त करो।

"मन बड़ा चंचल दुष्ट है। यही बन्धन और मुक्ति का कारण है। वह निरन्तर चलायमान रहता है। वह निमिष मात्र में पाताल से आकाश को उछलता-कूदता रहता है। इसमें क्षण मात्र में संसार को रचने अथवा नष्ट करने की शक्ति है। मन का विक्षेप भ्रान्ति को जन्म देता है। मन अविद्या अथवा अज्ञान का ही परिणाम है। हे राम ! वासना के विनाश अथवा प्राण के नियन्त्रण द्वारा मन को नष्ट कर दो। मन वासनाओं के समूह के सिवाय कुछ नहीं है। यदि वासनाएँ नष्ट हो जायें, तो मन का अस्तित्व नहीं रह सकता। मन के विस्तार और संकुचन से ही विश्व की उत्पत्ति तथा लय होता है। अतएव वृत्ति, संकल्प अथवा विचारों की लहरों पर नियन्त्रण द्वारा मन की क्रिया को बन्द कर दो। प्राण के नियन्त्रण से मन का नियन्त्रण होगा। प्राण की हलचल से मन की चंचलता उत्पन्न होती है। जीवन-श्वास से संसार के व्यापार सम्पन्न होते हैं और बन्द भी होते हैं। प्राणायाम के अभ्यास से श्वास को रोको। यदि मन का विनाश हो जाये, तो तुम्हें अनन्त सुख की अनुभूति होगी। यदि दृष्टि और दृश्य द्रष्टा में विलीन हो जायें, यदि ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय एक हो जायें अर्थात् त्रिपुटी का लय हो जाये, तो तुम्हें आत्मा की परम शान्ति प्राप्त होगी।

"इच्छाओं का त्याग, श्वास का नियन्त्रण तथा उचित खोज, हृदय और मन की क्रियाओं को रोक देंगे और परिणामतः कामना तथा भ्रान्ति का निराकरण होगा। सही ज्ञान विषयी मन को दुर्बल बनाता है। दोषपूर्ण समझ विषयासक्त चित्त को दृढ़ करती है। सन्त का चित्त कोई चित्त नहीं है। वह ब्रह्म ही है। वह पवित्रता का सार ही है। जिस प्रकार रासायनिक प्रक्रिया से ताम्र बन जाता है, उसी प्रकार ध्यान की प्रक्रिया से विषयी मन शुद्ध हो जाता है। भेद-भाव और भिन्नताएँ मन के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। वस्तुतः उनका कोई अस्तित्व नहीं है। निम्न अथवा अशुद्ध मन ससार के निम्न पदार्थों में क्रीड़ा करता है। उच्चतर अर्थात् पवित्र मन ब्रह्म अर्थात् परम आत्मा में शान्तिपूर्वक विश्राम करता है। ब्रह्म एक है। वह मन के द्वारा अनेक हो जाता है जो विभाजित करता, भेद उत्पन्न करता तथा विखण्डित करता और पृथक् करता है। मनुष्य तथा ब्रह्म (ईश्वर) के मध्य विभाजित दीवार मन ही है। साधारण भित्ति तो ईंट, पत्थर और सीमेन्ट से बनती है, परन्तु यह रहस्यमयी दीवार वासनाओं, विचारों, राग-द्वेष और अहं-भाव से निर्मित है। यदि आत्मिक खोज अथवा ध्यान के द्वारा यह भित्ति गिरा दी जाये, तब तुम केवल

एकरूपता और एकत्व का अनुभव करोगे। 'एक' ही यथार्थ है। केवल ब्रह्म ही सत्य है। रस्सी में सर्प की भाँति अथवा मृगमरीचिका में जल अथवा खम्भे में चोर की भाँति बहुत्व मिथ्या है।"

बिल्वफल की कथा

"वसिष्ठ जी ने क्रम चालू रखा- 'हे राम ! अब एक छोटी-सी मनोरजक कथा सुनो, जो पहले कभी नहीं सुनायी गयी। यह मैं तुम्हारी शिक्षा के लिए सक्षेप में कहता हूँ। एक सुन्दर विशाल बिल्वफल होता है, जिसका आकार कई मील दूरी के समान विस्तृत है। कई कल्प अथवा युगों तक भी वह नष्ट नहीं होता। मधु अथवा दिव्य अमृत-जैसी उसकी मधुर सुगन्धि है। वह अति-कोमल और रसीला होता है। वह सर्वश्रेष्ठ फल है। समस्त फलों का सारतत्त्व है। वह इतना दृढ़ और स्थिर है जैसा मन्दराचल और इतना अचल है कि कल्प के अन्त में भीषण तूफ़ानों से भी न हिले। वह कभी भूमि पर नहीं गिरता है। कभी अपक्कावस्था में नहीं पाया जाता है। वह षडरसों से परिपूर्ण है।

"इस फल के भीतर इसके असंख्य बीजों के रूप में करोड़ों संसार है। इसमें गूदा और मज्जा निहित हैं, जो सारे जीवों का आश्रय हैं और सबका पोषण करते हैं। इस आश्चर्यजनक फल के गूदे का भाग है-अनन्त ज्ञान अथवा शुद्ध चैतन्य । इसकी मज्जा है चित्-शक्ति है जो आकाश, समय, दूरी, गति, दिशाएँ तथा विधि-विधान आदि उत्पन्न करती है।"

राम बोले-"पूज्य गुरु ! यह सुन्दर दृष्टान्त है। मैंने बिल्वफल ही कथा (रूपक) को समझ लिया है। बिल्वफल स्वयं ब्रह्म ही है। वह अक्षुण्ण, असीम सच्चिदानन्द परमात्मा है। वह सर्वव्यापी ज्ञान अथवा शुद्ध प्रज्ञा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस ज्ञान-रूपी बिल्वफल की छाल ब्रह्म के अण्डाणु एवं समस्त संसार है।"

वसिष्ठ जी ने उपसंहार किया-"ब्रह्म अत्यन्त स्वादिष्ट आध्यात्मिक फल है। वह आनन्द और ज्ञान का पिण्ड है। जो व्यक्ति इस अत्यन्त आश्चर्यजनक फल को खाता है, वह अमरता प्राप्त करता है।"

शिखिध्वज की कथा

वसिष्ठ जी बोले-"राजा शिखिध्वज द्वापर युग में मालवा देश में उत्पन्न हुए थे। वह बड़े न्यायी, दयालु, धैर्यशील, विशालहृदयी, दृढ़ और गुणी थे। सौराष्ट्र की रानी चूडाला उनकी पत्नी थी। चूडाला विवेक एवं विचार से सम्पन्न थीं। वह इस प्रकार विचार करती थी-'यह 'मैं' क्या है? मैं कौन हूँ? मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है? मन में विक्षेप कहाँ से आता है? इसका कारण क्या है? यह कैसे और कहाँ से उद्भूत हुआ है? इस अहंभावी 'मैं' को किस प्रकार नष्ट किया जाये? क्या कोई अन्तिम सत्य है, जो शरीर और मन से स्वतन्त्र हो और जो अमर तथा अपरिवर्तनीय हो ? उस परम सत्य को किस प्रकार प्राप्त किया जाये? मुक्ति क्या है ? बन्धन क्या है? विद्या अथवा यथार्थ ज्ञान क्या है? अविद्या अर्थात् अज्ञान क्या है? माया क्या है? यह संसार क्या है? बन्धन और अविद्या से कैसे छुटकारा पाया जाये ? किस प्रकार शाश्वत सुख, अमरता और परम शान्ति प्राप्त हो ?

'यह शरीर जड़ है। यह पाँच तत्त्वों का हुआ है। यह नाशवान् है। इसका आदि और अन्त है। अतः 'मैं' संज्ञा इसके लिए प्रयुक्त नहीं हो सकती। 'मैं' दस इन्द्रियों के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता। इन्द्रियाँ मन के द्वारा

चलायमान होती हैं। वे भी जड़ हैं। वे रज से उत्पन्न हुई हैं। 'मैं' संज्ञा मन के लिए भी प्रयुक्त नहीं हो सकती । मन भी जड़ है। इसका आदि और अन्त है। यह आत्म-प्रकाशक नहीं है। यह तन्मात्राओं के सात्त्विक अंश से बना है। यह बुद्धि के द्वारा कर्म में प्रवृत्त होता है। बुद्धि को भी अहंकार से बल प्राप्त होता है। अतः यह 'मैं' नहीं हो सकती। अहंकार जीव के द्वारा चलायमान होता है, अतएव जीव भी 'मैं' नहीं हो सकता। यह मात्र छाया है। जैसे जल के सूख जाने पर सूर्य की परछाई लुप्त हो जाती है, उसी प्रकार मन-रूपी झील के सूख जाने पर अर्थात् जब मन का नाश कर दिया जाता है, तो छाया मात्र जो जीव है, वह तुम हो जाता है। सच्चिदानन्द आत्मा अथवा ब्रह्म जो देह, इन्द्रियों, प्राण, मन, बुद्धि और जीव का स्रोत है, वही सत्य असीम 'मैं' है। 'मैं' इस आत्मा अर्थात् अमर आत्मा से एकरूप हूँ। सच्चिदानन्द मेरा वास्तविक स्वरूप है।'

"इस प्रकार रानी चूडाला ने शुद्ध, सर्वव्यापी अमर आत्मा पर ध्यान लगाया और आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लिया। वह ज्ञानी और योगिनी भी थी। उसमें यौगिक शक्तियाँ थीं। वह आकाश में चल सकती थी। उसमें अष्ट सिद्धियाँ अथवा परा शक्तियाँ थीं।

"शिखिध्वज को विश्वास नहीं था कि उसकी पत्नी ज्ञानी और योगिनी है। चूडाला ने अपने पति को आत्मज्ञान का कुछ आभास देने का प्रयत्न किया, परन्तु वह उसके निर्देशों से लाभान्वित नहीं हुआ।

"शिखिध्वज एक असन्तोषप्रद जीवन-यापन कर रहे थे। उनके चित्त में शान्ति नहीं थी। एक दिन वह चूडाला से बोले- 'इस सांसारिक जीवन में मुझे कुछ सुख नहीं मिलता। मेरे हृदय में विषाद है। मैं वन में प्रवेश करके तप और ध्यानाभ्यास करना चाहता हूँ। मुझे अनुमति दो।'

"चूडाला बोली- 'मेरे पूज्य स्वामिन् ! जीवन के इस काल में आपको संन्यास नहीं लेना चाहिए।'

"शिखिध्वज ने चूडाला के शब्दों की परवाह न करके अर्धरात्रि में राजमहल से प्रस्थान कर दिया। बारह दिन तक चलते-चलते उन्होंने मन्दार पर्वत की घाटियों के वन में प्रवेश किया। उन्होंने कठोर तप किया, मन्त्रोच्चारण किया और फलों पर जीवन-यापन किया। उनका शरीर धीरे-धीरे क्षीण होने लगा ।

"चूडाला ने जागने पर देखा कि उसके पति जो पास में सो रहे थे-नहीं हैं। उसने समझ लिया कि वह वन में चले गये हैं। उसे हृदय में भारी दुःख हुआ। अठारह वर्षों तक उसने स्वयं राज्य का शासन किया।

"अब वह अपने पति की स्थिति देखना चाहती थी। एक रात्रि को अपनी यौगिक शक्ति से आकाश में चलने लगी और मन्दार पर्वत पर उतरी। वेष बदल कर वह एक महान् ब्राह्मण के पुत्र कुम्भ मुनि के रूप में प्रकट हुई।

"शिखिध्वज तुरन्त उठा और अपने समक्ष उपस्थित ब्राह्मण-पुत्र को नमन किया, जो पृथ्वी को बिना स्पर्श किये वायु में खड़ा था। चूडाला ने शिखिध्वज को योग में प्राप्त अपनी उच्च उपलब्धियों के प्रति विश्वस्त करने के लिए हवा में खड़े होने की यौगिक शक्ति प्रदर्शित की थी।

"शिखिध्वज बोला- 'हे कुम्भ मुनि ! मैंने कठोर तप किया, परन्तु मुझे आत्मज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। इसके विपरीत मेरे कष्ट और बढ़ गये हैं।'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'आत्मा का शाश्वत सुख तभी प्राप्त होता है, जब व्यक्ति गुरु के चरणों मैं बैठ कर श्रुतियों का श्रवण करे और उपनिषदों के महावाक्यों पर चिन्तन करे। शिष्य शाश्वत सुख तब भोग सकता है,

जब गुरु द्वारा प्रदत्त ज्ञान उसमें परिपक्व हो जाता है। आप बन्धन और मुक्ति की प्रकृति की सन्तों के साथ बैठ कर चर्चा क्यों नहीं करते? आप इन प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं खोजते -"तू कौन है? विश्व कैसे प्रकट हुआ? यह कब और कैसे समाप्त होगा?" ऐसा क्यों है कि तुम अज्ञानता की स्थिति में रहते हुए इन मूखों के खिलौनों में आनन्दित हो कर पृथ्वी के भीतर बिल में रहने वाले कीड़े की भाँति रहते हो। सभी वस्तुओं में ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान ही जन्म और मृत्यु को उनके दोषों सहित नष्ट कर सकता है। तुम उसे क्यों नहीं चाहते ? जिस प्रकार एक कीड़ा जिस लकड़ी में रहता है, उसमें छिद्र करने में ही अपना जीवन पूरा कर देता है, क्या तुम भी इस प्रकार अपना सम्पूर्ण जीवन कष्टप्रद तपस्या में ही व्यतीत करना चाहते हो? क्या तुम अमरता और परम शाश्वत शान्ति दिलाने वाला ज्ञान प्राप्त करना नहीं चाहते ? अशुद्ध वासनाओं, अविद्या और उसके प्रभाव को आत्मज्ञान द्वारा नष्ट करके जीवन्मुक्त हो जाओ। शुभ कृत्य अशुद्ध वासनाओं को नष्ट कर देंगे? अशुद्ध वासनाओं का विनाश होने पर मन का नाश हो जायेगा और तुम्हारे भीतर आत्मज्ञान का उदय होगा।'

"तत्पश्चात् शिखिध्वज ने कुम्भ मुनि को नमन करके कहा-'कृपया आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर लें, मुझे आत्मज्ञान के रहस्यों में दीक्षित करें। आप मेरे पूज्य गुरु हो।'

"कुम्भ मुनि ने कहा- 'हे राजन् ! मैं तुम्हें दो कथाएँ सुनाता हूँ- एक विद्वान् मनुष्य और चिन्तामणि की तथा हाथी की कथा। एक बार शास्त्रों का ज्ञाता एक धनी मनुष्य था। चाही हुई प्रत्येक वस्तु प्रदान करने वाली चिन्तामणि को प्राप्त करने हेतु उसने पूजा, प्रार्थना एवं अन्य पुण्य कृत्य सम्पन्न किये। वह इस चिन्तामणि की खोज में निकला। उसने इस ज्योतिर्मय रत्न को अपने समक्ष देखा और मन में सोचने लगा-"यह चिन्तामणि नहीं हो सकती। चिन्तामणि तो कठोर तपस्या द्वारा प्राप्त की जा सकती है। मैंने तो अधिक तप किया नहीं।" उसने यह स्वर्ण अवसर खो दिया और चिन्तामणि की खोज में भटकता रहा। एक सिद्ध ने उस विद्वान् को मूर्ख बनाना चाहा। उसने उसके मार्ग में एक काँच का छोटा टुकड़ा डाल दिया। उस विद्वान् मूर्ख ने इस भंगुर टुकड़े को सच्चा रत्न समझ लिया। उसने वह उठा लिया है और सोचा है कि यह उसे चाही हुई वस्तु देगा। इस विश्वास से उसके पास जो-कुछ था, वह सब दान में दे डाला। इस झूठे रत्न को ले कर जंगल में चला गया। वह नकली रत्न उसके किसी काम का नहीं था। अपनी गहन अज्ञानता के कारण उसने दुस्सह कष्ट सहे।

'अब दूसरी कथा सुनो-विन्ध्य पर्वत क्षेत्र में एक विशाल हाथी रहता था। उसे एक शिकारी ने जाल में फँसा लिया-उसे बड़ी मजबूत लोहे की जंजीर बाँध दी गयी। उसके बड़े-बड़े तीक्ष्ण दाँत थे। हाथी ने दृढ़ जंजीरों को तोड़ डाला और भाग गया। वह मनुष्य पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने एक बड़ा गड्ढा खोद कर उसे पत्तों व घास से भर दिया। हाथी फिर गड्ढे में फँस गया और शिकारी के द्वारा फिर सताया जाने लगा। यदि हाथी ने उस मनुष्य को, जब वह भूमि पर गिरा हुआ था, मार डाला होता तो वह गड्ढे में न गिरता । इसी प्रकार जिन लोगों में भविष्य में होने वाली दुर्घटनाओं को रोक कर उसके प्रति सुरक्षा के उपाय करने की दूरदर्शिता नहीं होती, वे निश्चय ही विन्ध्याचल के हाथी की भाँति कष्ट पायेंगे।'

"शिखिध्वज बोला- 'हे दिव्य युवक। कुम्भ मुनि ! कृपया मुझे चिन्तामणि और हाथी की कथाओं का भाव स्पष्ट करके समझाइए ।'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'चिन्तामणि की खोज करने वाले विद्वान् को शास्त्रों का केवल सैद्धान्तिक ज्ञान था, सत्य का अनुभव (तत्त्वज्ञान) किंचित् नहीं था। उसने रत्न की खोज की, परन्तु यह नहीं जानता था कि वह है क्या। वही मनुष्य तुम स्वयं हो। यद्यपि तुम समस्त धर्मशास्त्रों में दक्ष हो, परन्तु तुममें चित्त की शान्ति नहीं है। तुमने अपना राज्य, स्त्री तथा अन्य सम्बन्धियों को त्याग दिया है, जहाँ यथार्थ चिन्तामणि थी। तुम्हें सच्चे त्याग का कुछ ज्ञान नहीं है। यह समझ लो कि अहंकार और कामनाओं के विनाश से मनुष्य को पूर्णता और शान्ति मिलती है। संसार को त्यागने से नहीं, वरन् वासनाओं और अहं-भाव को त्यागने से ही शाश्वत शान्ति और शाश्वत सुख मिलता

है। तुमने सच्चे त्याग-रूपी रत्न को खो दिया; अपनी दोषपूर्ण दृष्टि से कष्टप्रद तपःसाधना-रूपी टूटे हुए झूठे काँच के टुकड़े को चुन लिया। अतएव तुम्हें चित्त की शान्ति नहीं है। अमूल्य चिन्तामणि तुम्हारे समक्ष होते हुए तुमने गलत समझ लिया कि तप से शान्ति मिलेगी। तुमने व्यर्थ में ही सोच लिया कि तुम्हें चिन्तामणि मिल गयी । अन्त में केवल यह जाना कि तुम्हारी उपलब्धि एक टूटे हुए काँच के टुकड़े के समान भी नहीं थी।'

"कुम्भ मुनि बोलते रहे-'सुनो, हे महान् राजा ! अब मैं तुम्हें विन्ध्य पहाड़ियों के हाथी की कथा सुनाता हूँ। तुम्हीं वन में वह हाथी हो। दो लम्बे दाँत वैराग्य और विवेक के हैं। हाथी का शिकारी अज्ञान है। जिस प्रकार मनुष्य द्वारा बाँधे जाने पर हाथी ने अत्यधिक कष्ट सहे, उसी प्रकार तुम अज्ञान द्वारा दिये हुए कष्ट सह रहे हो। जैसे बलशाली हाथी लोहे की जंजीरों से बँधा था ऐसे ही तुम वासना-रूपी लोहे की जंजीरों से जकड़े हुए हो। वस्तुतः कामनाएँ लोहे से भी अधिक दृढ़ होती हैं। लोहे को जंग लगता है और कालान्तर में समाप्त हो जाता है, परन्तु कामनाएँ बढ़ती जाती हैं और तुम्हें अत्यधिक दृढ़ता से जकड़ लेती हैं।

'जिस प्रकार हाथी ने लोहे की जंजीरों को तोड़ डाला, ऐसे ही तुमने भी राज्य, विषय-भोग, स्त्री, सम्बन्धियों और मित्रों आदि के बन्धनों को तोड़ डाला। हे राजन् ! लोहे की जंजीरों को तोड़ना सम्भव है; परन्तु कामनाओं, आशाओं और अपेक्षाओं के बन्धनों को तोड़ना अत्यधिक कठिन है। हाथी का शिकारी हौदी से गिर गया। यह इस बात का प्रतीक है कि इन्द्रिय-भोगों के प्रति उदासीनता एवं निरासक्ति द्वारा तुमने अपनी अज्ञानता को नष्ट कर दिया है। परन्तु तुम्हारा त्याग सच्चा त्याग नहीं था । तुमने त्याग के रहस्य को नहीं समझा है। तुमने अभी सब-कुछ नहीं त्यागा है।'

"शिखिध्वज कहने लगा- 'आप कैसे कहते हैं कि मैंने सब-कुछ नहीं त्यागा है, जब कि मैंने अपना राज्य, महल, सारी सम्पत्ति और अपनी प्यारी पत्नी तक को भी त्याग दिया? क्या मैंने सब-कुछ नहीं त्यागा है? क्या यह सब-कुछ पूर्ण एवं यथार्थ त्याग नहीं है? आप मुझसे और क्या छुड़वाना चाहते हैं?'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'यद्यपि तुमने अपना राज्य, महल, मित्र-सम्बन्धी और पत्नी तक को त्याग दिया, परन्तु यह सब सच्चा त्याग नहीं है। ये सब वास्तव में तुम्हारे नहीं हैं। ये स्वयं आते हैं और तुमसे दूर भी चले जाते हैं। तुमने अपना अहं-भाव और कामना नहीं त्यागी। कामना और अहं को त्याग कर ही तुम दुःखों से मुक्ति पा सकते हो और शाश्वत सुख तथा शाश्वत शान्ति प्राप्त कर सकते हो।'

"तब शिखिध्वज बोला-'अब जंगल ही मेरा सब-कुछ है। वे चट्टानें, वृक्ष और झाड़ियाँ ही अब मेरी सम्पत्ति हैं। मैं इन सबको भी छोड़ने को तत्पर हूँ, यदि यह यथार्थ त्याग हो ।'

"कुम्भ मुनि बोले- 'वन को त्यागना सच्चा त्याग नहीं होगा। फिर भी तुममें कामना और अहंकार शेष रहेगा।'

"शिखिध्वज ने अपनी मृगछाला, माला, कुशा, मिट्टी के बर्तन और कमण्डल को इकट्ठा करके सूखी घास से उनमें आग लगा दी। फूस की कुटिया को भी आग लगा दी। फिर कुम्भ मुनि से बोला- 'मैं सोचता हूँ कि अब मैंने पूर्ण और सच्चा त्याग कर दिया है-हे दिव्य बालक! क्या और भी कुछ त्यागना शेष रह जायेगा ? अब और क्या करूँ?'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'कितने दुःख की बात है, तुमने तो कुछ नहीं त्यागा है।'

"शिखिध्वज अपने मन में सोचने लगा-'अब मेरे पास यह मांस, रुधिर और हड्डियों से निर्मित देह रह गयी है। मैं अभी इस पर्वत की चोटी पर चढ़ कर इसे पृथ्वी पर गिराये देता हूँ, यह टकरा कर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगी।' यह सोचता हुआ वह एक चट्टान की चोटी पर चढ़ गया और अपने शरीर को नीचे गिराने ही वाला था कि उसके गुरु-रूप कुम्भ मुनि ने उसे रोका।

"कुम्भ मुनि बोले- 'तुम कितनी महान् मूर्खता का कृत्य कर रहे हो? तुम अपने इस निर्दोष शरीर को नष्ट करने की चेष्टा क्यों करते हो? तुम्हारे आत्मज्ञान-प्राप्ति में यह शरीर कैसे बाधक हो सकता है? इस शरीर का अन्त होना पूर्ण एवं यथार्थ त्याग नहीं होगा। इस शरीर का एक शत्रु है जो इसे विक्षिप्त करता है, जो शरीर को गति देता है और जो समस्त जन्म और कर्मों के बीज बोता है। यदि तुम अपने शरीर के इस शत्रु से छुटकारा पा सको, तभी तुम्हारा सर्व त्याग होगा।'

"शिखिध्वज ने पूछा- 'हे कुम्भ मुनि ! मुझे बताओ कि वह क्या है जो शरीर को उद्वेलित करता है? हमारे पुनर्जन्मों का मूल क्या है? हमारे भावी जन्मों के कमाँ और भोगों की जड़ क्या है? ऐसा वह क्या है कि जिससे बचने से हम इस द्वन्द्वपूर्ण ब्रह्माण्ड में सब-कुछ त्याग सकेंगे। हे दिव्य युवक! मुझे वह उपाय बताओ जिससे मैं उसे त्याग सकूँ जो इस देह को गति देता है अथवा विक्षिप्त करता है।'

"कुम्भ मुनि बोले- 'समस्त दुःखों और कष्टों का मूल कारण यह मन है। इसे विभिन्न उपाधियों से जाना जाता है-जीव, प्राण, बुद्धि और अहंकार। यह संकल्पों को जन्म दे कर जीव को मिथ्या पदार्थों से जोड़ता है। यह भ्रम का स्थान है। यही हमारी देह का स्रोत है। यह न जड़ है न चेतन । सदा विक्षिप्त रहने वाला यह मन ही इस विश्व को बनाता है। यही बन्धन उत्पन्न करता है। जिस प्रकार वायु वृक्ष को हिला देती है, उसी प्रकार मन शरीर को हिलाता है और विक्षिप्त करता है। मन ही समस्त कर्मों का बीज है। जो व्यक्ति अपने मन के अधीन है, वह सदैव चिन्ताओं, परेशानियों, विक्षेपों और कष्टों से घिरा रहता है। अतएव इस मन का त्याग करने से तुम वास्तव में संसार में सब-कुछ त्याग दोगे। मन का त्याग ही सच्चा त्याग है। यही तुम्हें शाश्वत सुख और आत्मज्ञान प्राप्त करने में सहायक होगा। आत्मा का ज्ञान होने पर तुम ब्रह्म अर्थात् परमात्मा से एकरूप हो जाओगे ।'

"शिखिध्वज कहने लगा- 'हे मुनि ! यह मन क्या है? इसकी यथार्थ प्रकृति क्या है? इस मन का कारण क्या है। इस दुष्ट मन का मैं किस प्रकार नाश कर सकता हूँ?'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'मन वासनाओं की गठरी है। मन की यथार्थ प्रकृति वासनाएँ ही हैं। मन और वासनाएँ पर्यायवाची शब्द हैं। अज्ञानी मनुष्य के लिए वासनाओं अर्थात् सूक्ष्म आकांक्षाओं से छुटकारा पाना अत्यन्त कठिन है। मन कहलाने वाले वृक्ष का बीज 'अहं' है। मन शरीर की गतिशीलता का कारण है। हृदय-रूपी कमल के चारों ओर मँडराने वाली मधुमक्खी है। अहंकार-रूपी बीज से प्रस्फुटित होने वाला अंकुर बुद्धि है। मन-रूपी वृक्ष का तना शरीर है। संकल्प बहुगुणित शाखाएँ हैं। वे बुद्धि-रूप अंकुर से उत्पन्न होते हैं। कृत्यों के अनुरूप मन चार रूप धारण करता है-मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार। जब यह संकल्प-विकल्प करता है, तो मन है। जब किसी बात का स्मरण करता है, तो चित्त है। जब निश्चय करता है, तब बुद्धि है। जब यह अपने-आपको आरोपित करके अभिमान में भरता है, तब अहंकार है। नित्य-प्रति मन-रूपी वृक्ष की शाखाओं को काटते रहो और अन्त में पूर्णरूपेण उसे जड़ से नष्ट कर दो। डालियों को काटना केवल गौण कृत्य है। मुख्य काम है इस अनिष्टकर वृक्ष को जड़ से उखाड़ फेंकना । वासनाओं की शाखाएँ कमों की असंख्य फसलें उत्पन्न कर देंगी। ज्ञान रूपी तलवार से वासनाओं को नष्ट कर दो। तुम्हें शान्ति मिलेगी। मन-रूपी वृक्ष के बीज अहंकार को भस्म कर दो।'

"शिखिध्वज बोला- हे सम्माननीय मुनि ! मुझे बताइए कि मन-रूपी वृक्ष के बोज को भस्म कर डालने वाली अग्नि क्या है?'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'मन-रूपी वृक्ष के बीज को भस्म कर डालने बाली अग्नि है-ब्रह्मज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान, जो 'मैं' की यथार्थ प्रकृति की अधवा 'मैं कौन हूँ' की खोज से प्राप्त किया जा सकता है।'

"शिखिध्वज कहने लगा- 'हे साधु' मैंने बारम्बार 'मैं' की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न उपायों से खोज की है। 'मैं' न देह हूँन प्राण, न यह मन हूँ न बुद्धि और न इन्द्रियाँ न अहंकार ।'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'यदि तुम इनमें से कोई नहीं हो, तो तुम अपने विषय में वस्तुतः क्या सोचते हो? यदि 'मैं' इनमें से कुछ नहीं होता तो अन्य क्या था ?'

"शिखिध्वज बोला- 'हे अति-पूज्य सन्त। मैं अपने को प्रबुद्ध और पवित्र आत्मा अथवा शुद्ध चैतन्य अनुभव करता हूँ। मैं मन के बीज, अपने अहं से छुटकारा पाने में असमर्थ हूँ। मैं उसका नाश करने का अपनी ओर से पूर्ण प्रयास करता हूँ। जितना ही मैं उसे छोड़ने की चेष्टा करता हूँ, वह उतना ही अधिक मुझे जकड़ता है।'

"कुम्भ मुनि बोले- 'प्रत्येक परिणाम किसी-न-किसी कारण से उत्पन्न होता है। यह प्रकृति का सर्वत्र सामान्य नियम है। तुम अहंकार का कारण खोजो । कारण मालूम करके मुझे बताओ कि वह क्या है?'

"शिखिध्वज ने उत्तर दिया- 'केवल माया मेरे अहंकार का कारण है। ज्ञान अहंकार का कारण है। हे दिव्य पुरुष । मुझे समझाओ कि बाह्य पदार्थों के विचारों का किस प्रकार नाश किया जाये ? बाह्य दृश्य अथवा नाम-रूपों का मैं किस प्रकार निषेध कर सकता हूँ?'

"कुम्भ मुनि बोले- 'यदि तुम मुझे ज्ञान का कारण बताओ, तो मैं तुम्हें कारण और परिणाम की प्रक्रिया, विचारों का दमन तथा अहंकार का विनाश करने के उपाय बताऊँगा।'

"शिखिध्वज बोला- 'ज्ञान शरीर, वृक्ष, नदी, पहाड़, गाय और घोड़ा आदि मिथ्या पदार्थों द्वारा उत्पन्न होता है। यदि पदार्थों का अस्तित्व नहीं है, तो हम न विचार कर सकते हैं, न कुछ जान सकते हैं। यदि पदार्थ नहीं है, तो हमें पदार्थों का ज्ञान ही नहीं होगा और मन का बीज अहंकार विहीन हो जायेगा।'

"कुम्भ मुनि बोले- 'यदि शरीर और अन्य पदार्थों का अस्तित्व है, तो दृश्य पदार्थों के ज्ञान का भी अस्तित्व है। क्योंकि शरीर एवं अन्य पदार्थों का वास्तव में अस्तित्व नहीं है, तो फिर ज्ञान का आधार क्या है? यदि तुम अपनी देह को यथार्थ मान कर उस पर निर्भर हो, तो मुझे बताओ-हे राजन् ! जब तुम्हारी आत्मा देह से अलग हो जायेगी, तो तुम्हारा ज्ञान किस पर निर्भर होगा ?'

"शिखिध्वज ने उत्तर दिया- 'शरीर जो सबके द्वारा दृश्यमान् है और जो समस्त कर्मों का फल भोगता है, उसे कोई अवास्तविक अथवा काल्पनिक नहीं मान सकता। जो शरीर सबके द्वारा स्पष्ट देखा जाता है और जो हाथ, पाँव आदि से सम्पन्न है तथा सब प्रकार की क्रियाएँ करता है, उसे कौन नकार सकता है? हम यह कैसे कह सकते हैं कि शरीर है ही नहीं।'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'जन्म से पूर्व देह नहीं थी; मृत्यु के बाद भी देह नहीं रहती। जो न प्रारम्भ में है, न अन्त में रहता है; जो केवल मध्य में ही दृष्टिगोचर होता है, वह मिथ्या है और वस्तुतः बिना अस्तित्व वाला है। यह शरीर जो कर्मों के द्वारा उत्पन्न होता है, वह स्वयं कारण नहीं है। परिणामतः बुद्धि का प्रभाव भी अस्तित्व रहित है। जो किसी कारण से उत्पन्न नहीं हुआ हो, उसका अस्तित्व नहीं माना जा सकता। उसका ज्ञान अथवा चेतना जो हममें है, वह भी मिथ्या होगी। अतएव, अहंकार एवं अन्य प्रभाव जो ज्ञान की भ्रान्ति से उत्पन्न होते हैं, वे भी

अस्तित्व रहित हैं। जो कुछ भी बिना सच्चे कारण के विद्यमान प्रतीत होता है वह इतना ही मिथ्या है जितना रेगिस्तान में मृगमरीचिका। सारे पदार्थ जो कारण की प्रकृति के नहीं हैं, झूठे हैं-जैसे सीप में चाँदी अथवा खम्भे में मनुष्य। शरीर और अहंकार के अस्तित्व में विश्वास करना ऐसा है जैसा वन्ध्या स्त्री के पुत्र का श्रृंगार करना।'

"शिखिध्वज कहने लगा- 'क्या हम अपने पिताओं को अपने शरीरों का जन्मदाता एवं कारण नहीं मान सकते?'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'पिता कारण नहीं हो सकता। उसे अपने लिए कोई कारण चाहिए।'

"शिखिध्वज बोला- 'हम निश्चय ही अपने माता-पिताओं को अपने जन्म का कारण मान सकते हैं। हमारे माता-पिता के जन्म का कारण हमारे दादा-दादी थे। फिर ब्रह्मा हमारे प्रथम परदादा को मानव-पीढ़ी हमारे उत्पत्तिकर्ता मानेंगे। हे श्रद्धेय मुनि! क्या मेरा कथन सही नहीं है?'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'मुख्य सृष्टिकर्ता, परदादा ब्रह्मा मूल कारण नहीं हो सकता, क्योंकि उसके जन्म का भी कोई कारण होना चाहिए। सृष्टि से पहले केवल अद्वैत, स्वयम्भू, स्वयं-प्रकाशमान् परब्रह्म ही आलोकित होता है। यह सृष्टि केवल प्रतीति मात्र है। मृगमरीचिका में जल की भाँति यह प्रकट होती है। अतएव यह विचार दोषपूर्ण है कि ब्रह्मा सृष्टि का रचयिता है। परदादा का अस्तित्व मिथ्या है। सृष्टि नाम का कुछ नहीं है। समस्त जीवों की सृष्टि भी मिथ्या है (यह परब्रह्म के दृष्टिकोण से है)

"शिखिध्वज बोला- 'सचमुच परब्रह्म ही ब्रह्म का कारण है, हे पूज्य मुनि ! क्या यह सत्य नहीं है?'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'परब्रह्म वह है जो अजन्मा, अमर, कारण रहित, अपरिवर्तनीय, अकाल, अकर्ता, अनादि और अनन्त है। वह कारण नहीं हो सकता । न वह कर्ता हो सकता है न भोक्ता। केवल एक जीवन्त सत्य है। वह ब्रह्म है। ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करके अविद्या का विनाश करो। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पूर्णतया विलीन हो जायेगा और आप सर्वत्र स्वयं का अर्थात् आत्मा का दर्शन करोगे।'

"शिखिध्वज बोला- 'हे पूज्य गुरु ! अब मैं सत्य का दर्शन कर रहा हूँ। अब मैं अनुभव करता हूँ कि मैं शुद्ध, सर्वव्यापी, स्वतन्त्र, अमर आत्मा हूँ। मैं शान्त हूँ। मैं पूर्ण आनन्द आत्मा में स्थित हूँ। दृश्य जगत् का यथार्थ अस्तित्व नहीं है। माया मुझे स्पर्श नहीं कर सकती। मैं ब्रह्म हूँ। मैं अविभाज्य स्वयं-प्रकाशमान् आत्मा हूँ। मैं ब्रह्म में लीन हूँ।'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'गुरु के शब्द शिष्य के मन में तभी स्थान पायेंगे, जब कि शिष्य मोक्ष के साधन-चतुष्टय से सम्पन्न होगा, यदि वह शान्त और अक्षुब्ध है, यदि वह निरासक्त और अन्तर्मुखी है और यदि उसमें आत्म-संयम है। तुम ज्ञान के प्रकाश से परिपूर्ण हो। तुमने लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। तुम आत्मज्ञान से जाज्वल्यमान हो।'

"शिखिध्वज बोला- 'हे पूज्य गुरु ! जीवन्मुक्त आत्माएँ विश्व के कल्याण हेतु कर्म करती हैं। क्या वह मन के द्वारा कार्य नहीं करतीं? बिना मन के कोई कैसे काम कर सकता है? कृपया मुझे यह समझाइए।'

"कुम्भ मुनि बोले- 'मन दो प्रकार का माना जाता है, शुद्ध और अशुद्ध। जो आकांक्षा के विचार से संयुक्त है, वह अशुद्ध मन है और जो बिना आकांक्षा वाला है, बह शुद्ध मन है। अर्थात् शुद्ध मन को उच्चतर मन कहते हैं और अशुद्ध मन को 'निम्नतर मन' । मनुष्यों के लिए उनका मन ही बन्धन अथवा मोक्ष का कारण है। जो मन इन्द्रिय-विषयों की ओर आकृष्ट होता है, वह बन्धन की ओर प्रवृत्त होता है। जो इस प्रकार आकृष्ट नहीं होता, वह

मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर है। क्योंकि विषय-पदार्थों के प्रति आकृष्ट न होने वाले मन को मुक्ति मिलती है। मोक्ष के पश्चात् उसका चित्त भौतिक पदार्थों की इच्छा से बिलकुल मुक्त हो जाता है।

'अशुद्ध मन अशुद्ध वासनाओं, रजस् तथा तमस् से पूर्ण रहता है और शुद्ध मन शुद्ध विचारों तथा सत्त्व से परिपूर्ण रहता है। अशुद्ध वासनाएँ पुनर्जन्म का कारण बनती हैं। शुद्ध वासनाओं से पूर्ण शुद्ध मन मोक्ष अर्थात् जन्म-मरण से मुक्ति की ओर प्रवृत करता है। सांसारिक वृत्ति वाले मनुष्य निम्नतर अथवा अशुद्ध मन से कर्म करते हैं। वे अपने कर्मों के बन्धन में हैं। मुक्त सन्त जन शुद्ध अथवा सात्त्विक मन से काम करते हैं। वे अपने कर्मों से नहीं बँधते, क्योंकि उनमें अहं-भाव नहीं होता और वे अपने कर्मों के फल की आकांक्षा नहीं करते हैं।

'अशुद्ध मन अस्थिर होता है। वह सदैव चंचल रहता है। वह एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर दौड़ता है। वह सदैव ऐन्द्रिक विषयों की कामना करता हुआ अनेक प्रकार के भय और कष्टों से पीड़ित रहता है। शुद्ध मन स्थिर होता है। वह ब्रह्म-विचार करता है। परम सत्ता में वास करता है। वह ऐन्द्रिक विषयों की ओर नहीं भटकता है। वह सब प्रकार के भय और कष्टों से मुक्त रहता है।

'अशुद्ध मन वासनाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जो असंख्य जन्मों का कारण बनती हैं। मन अपनी चंचलता से अनेक प्रकार की वासनाओं का शिकार बनता है। चंचलता रजस् और विक्षेप-शक्ति से उत्पन्न होती है। जब मन अस्थिर होता है, तो एक विषय से दूसरे विषय पर दौड़ता है।

'अज्ञानी अथवा सांसारिक व्यक्ति अशुद्ध मन के द्वारा शासित होता है। वह निम्नतर मन के निर्देशानुसार चलता है। परन्तु सन्त अथवा ज्ञानी मन को अपने पूर्ण नियन्त्रण में रखता है। वह अन्तर्प्रज्ञा की स्फुरणा से कार्य करता है।

'जिस प्रकार धोबी वस्त्र की मैल को धूल (रेत) से साफ करता है, जिस प्रकार यात्री अपने पाँव के काँटे को दूसरे काँटे से निकालता है-उसी प्रकार अशुद्ध मन का शुद्ध मन के द्वारा विनाश किया जाना चाहिए।

'जिसने अपने अशुद्ध एवं निम्न मन का नाश कर दिया है, उसने पुनर्जन्मों को बहुत दूर भगा दिया है। कोई कष्ट उसे प्रभावित नहीं करेगा। सन्त जिन शुद्ध वासनाओं के द्वारा कार्य करते हैं, वे उनके पुनर्जन्मों का कारण नहीं बनती हैं।

'जब तुम आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान प्राप्त करोगे, समस्त अशुद्ध वासनाएँ पूर्णतया भस्म हो जायेंगी। ध्यान, जप, कीर्तन, प्राणायाम, ब्रह्म-विचार एवं धार्मिक पुस्तकों के अध्ययन एवं सत्संग शुद्ध वासनाओं को उत्पन्न करते हैं।

'जब मन पदार्थों की आकांक्षा से मुक्त होगा और आत्मा में विश्राम करेगा, तुम शाश्वत आनन्द का अनुभव करोगे।

'जब मन पदार्थों की वासना एवं कामना से मुक्त हो कर नियन्त्रित हुआ हृदय में केन्द्रित होता है और जब यह सत्य अर्थात् आत्मा को प्राप्त कर लेता है, तब तुम मोक्ष अर्थात् जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त कर लोगे।

'हे राजन् ! तुम अपने मन को चंचल मत होने दो। इसे भौतिक पदार्थों की समस्त कामनाओं से सदैव मुक्त रखो। शुद्ध चित्त अथवा उच्चतर चित्त की सहायता से अशुद्ध चित्त का नाश करो और फिर उच्चतर चित्त से भी ऊपर उठ जाओ। ईश्वर करे, तुम शिला की भाँति दृढ़ रहो! तुम सात्त्विक मन से सम्पन्न बनो! पूर्ण आनन्द-स्वरूप आत्मा में सदैव शान्तिपूर्वक विश्राम करो!'

"शिखिध्वज बोला- 'हे पूज्य गुरु! मुझे इस सृष्टि के समारम्भ और विनाश के सम्बन्ध में कुछ बताओ। वैयक्तिक आत्मा के विचार को हम नित्य-शुद्ध एवं प्रकाशित ब्रह्म तथा अर्थात् परम सत्ता के विचार के साथ कैसे मिश्रित कर सकते हैं?'

"कुम्भ मुनि बोले- 'सब-कुछ दृश्यमान् विनाशशील है। प्रत्येक प्रलय अथवा महाकल्प के अन्त में वे सब अदृश्य हो जाते हैं। शान्त, सर्वव्यापक, आनन्द-स्वरूप, अक्षुण्ण, शुद्ध और ज्योतिर्मय ब्रह्म सदैव विद्यमान रहता है। जिस प्रकार जल एक निश्चित समय पर लहर बन जाता है, उसी प्रकार यह विश्व परम सत्ता अर्थात् ब्रह्म में उभरता और विलीन होता है। जिस प्रकार सोने में से कंगन, अँगूठी आदि विभिन्न प्रकार के आभूषण निकलते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म से ही नाम-रूपों का यह संसार उद्भूत होता है। यह विश्व चिन्मात्र के अतिरिक्त कुछ नहीं है, जिस प्रकार लहर सागर के जल के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

'ब्रह्म, शिव, सत्य, चिन्मात्र, सत् और चित्-ये सब पर्यायवाची संज्ञाएँ हैं। मन की किंचित् हलचल से यह विश्व उत्पन्न होता है। यदि तुम आत्मज्ञान प्राप्त कर लो, यह ब्रह्माण्ड अदृश्य हो जायेगा। रस्सी में सर्प की भाँति ब्रह्म में यह मिथ्या संसार प्रतीत होता है। यह विश्व ब्रह्म का विवर्त है जैसे कंगन, अँगूठी आदि स्वर्ण के विवर्त हैं। अज्ञानी के लिए ही यह विश्व सत्य है। गम्भीर ध्यानाभ्यास करने से तुममें दिव्य दृष्टि विकसित होगी और तुम ब्रह्म अथवा परम सत्ता को अन्तर्दृष्टि से साक्षात् देख सकोगे।

'केवल ब्रह्म ही यथार्थ अस्तित्व है। वह सर्वात्मा है। वह पूर्ण है। वह इस जगत् का सार रूप है। वह ऐसा एकत्व है जो प्रकृति की समस्त विविधताओं एवं विभिन्नताओं के भीतर द्वैत-भाव को कभी स्वीकार नहीं करता।

'विश्व की प्रकृति और हमारे अहंकार के विषय में अनुसन्धान करना व्यर्थ है, क्योंकि वास्तव में इनका अस्तित्व नहीं है। वे रस्सी में सर्प की भाँति मिथ्या प्रतीति मात्र हैं। अहंकार और विश्व के भाव अर्थहीन हैं; ये मस्तिष्क की उपज मात्र हैं। मैं, तू, यह, वह आदि एक-दूसरे की पहचान हेतु निकाले हुए मनुष्य के दिये हुए नाम हैं। ये हमारी कल्पना की उपज हैं, वास्तव में इनका अस्तित्व नहीं है। मैं, तू, यह, वह आदि का ज्ञान हमारे स्वप्नों की अभिव्यक्ति की भाँति है।'

"शिखिध्वज बोला- 'हे पूज्य मुनि ! अब मैं समझ गया कि मन-जैसी भी कोई वस्तु नहीं है।'

"कुम्भ मुनि बोले- 'विश्व का वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं है। कभी भी, किसी भी स्थान पर मन नाम की कोई वस्तु नहीं है। जब विश्व का ही अस्तित्व नहीं है, तो मन कैसे हो सकता है। यह विश्व ब्रह्म का ही सार है। ब्रह्म से भिन्न कोई विश्व नहीं है। जो-कुछ हमारे समक्ष प्रस्तुत है, ब्रह्म में ही उसका अस्तित्व है। जिस प्रकार वायु का झोंका वायु में विलीन हो जाता है, आभूषण स्वर्ण में विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार यह विश्व ब्रह्म में विलीन हो जाता है। सन्त इस विश्व को नहीं देखता; वह सर्वत्र आत्मा को देखता है। यह विश्व तो केवल अज्ञानियों की दृष्टि में ही प्रकट होता है। यह विश्व उतना ही असत्य है, जितना टार्च की घूमती हुई रोशनी से बना वृत्त । मन अज्ञानता का दूसरा नाम है। मन कुछ नहीं है। यह सत्य प्रतीत होने वाला असत्य है। मनुष्य के पुनर्जन्मों की कारक स्थूल वासनाएँ ही मन कहलाती हैं।

'हे राजन्! तुम व ब्रह्म से एकात्मकता स्थापित करो, जो अजन्मा, आद्यन्त रहित, अक्षुण्ण, शाश्व अविभाज्य एवं नित्य शान्त है और सदैव परम शान्ति में निवास करो।'

"शिखिध्वज बोला- 'हे सन्त! मुझे बताइए कि जीवन्मुक्त लोग इस संसार में कैसे रहते हैं?'

"कुम्भ मुनि बोले- 'जीवन्मुक्त सन्त वासनाओं अथवा इच्छाओं से मुक्त होते हैं। उन्होंने अपने चित्त का नाश कर दिया है। उनको अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण होता है। वे कल्याणकारी गुणों से सम्पन्न होते हैं। उनमें सदैव समता और समदृष्टि रहती है। उनमें अपने कर्मों के फल की तथा स्वर्ग की कोई कामना नहीं होती । जीवन की प्रत्येक स्थिति में उनका मानसिक सन्तुलन बना रहता है।'

"शिखिध्वज बोला- 'हे पूज्य गुरु! मुझे बताइए कि किसी वस्तु में गति और अचलता एक-साथ कैसे हो सकती है?'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'केवल एक वस्तु है-ब्रह्मन् । यही एक सार है। यह सर्वव्यापी है, अवर्णनीय, अचिन्त्य तथा निर्गुण है। मनुष्य दीर्घ काल तक आत्मज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थों के अध्ययन, सत्संग और सतत ध्यान द्वारा आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

'यह आत्मा सागर के जल के समान है। जिस प्रकार जल महान् लहरों से हिलता है, उसी प्रकार आत्मा बुद्धि द्वारा उत्तेजित होता है। अज्ञानी को यह ब्रह्माण्ड-रूप दिखायी देता है। बुद्धि सदा व्यस्त और क्रियाशील रहती है, परन्तु आत्मा अचल और निष्क्रिय है। बुद्धि में रंचमात्र स्फुरणा ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करती है। जब बुद्धि क्रियाशीलता से विरत हो जाती है, तो दृश्यमान् जगत् का लोप हो कर ब्रह्म ही प्रकाशमान् होता है। समस्त गति बन्द हो कर अचल ब्रहा का अस्तित्व रह जाता है। हे राजन् ! तू वह अमर, अचल, आनन्द-स्वरूप ब्रह्म है। यह समझ कर समाधि में अचल शिला की भाँति स्थित हो जाओ।'

"शिखिध्वज मूर्ति की भाँति शान्त और मौन हो कर बैठ गया और समाधि में प्रवेश करके तीन दिन तक इस स्थिति में रहा।

"इस बीच कुम्भ मुनि चूडाला के रूप म अपने वास्तविक रूप को धारण करके अपनी यौगिक शक्ति से आकाश-मार्ग द्वारा अपने महल में पहुँच गयी। उसने अपने अनुपस्थित स्वामी के कर्तव्यों को सँभाला। तीन दिन पश्चात् वह आकाश-मार्ग से गयी। फिर कुम्भ मुनि का वेश धारण किया और जंगल में शिखिध्वज की कुटिया में पहुँची।

"उसने देखा कि राजा निर्विकल्प समाधि में था। उसने उसे समाधि से जगाना चाहा और सिंहनाद किया। इससे जंगली पशु चौंक गये, किन्तु राजा समाधि से नहीं जागा। तब उसने राजा को पुनः चेतनावस्था में लाने के लिए हाथ से हिलाया, पर इससे भी कुछ नहीं हुआ। तब उसने उसे भूमि पर गिरा दिया और तब भी वह न जागा और न ही सामान्य स्थिति में आया।

"वह अपने मन में इस प्रकार सोचने लगी- 'मैं देखती हूँ कि मेरे स्वामी परम सत्ता में लीन हो गये हैं। तब मैं उनके सूक्ष्म शरीर पर ध्यान लगा कर अपनी अन्तर्दृष्टि द्वारा ज्ञात करूँगी कि इनके हृदय में कुछ सत्त्व अथवा बुद्धि अथवा जीवन का अवशिष्ट है क्या। यदि है तो मैं एक अन्य विधि से जगा कर इनके साथ आनन्दपूर्वक रहूंगी, अन्यथा मैं भी इस शरीर का त्याग कर विदेहमुक्ति प्राप्त कर लूँगी।'

"चूडाला ने शिखिध्वज के सूक्ष्म शरीर पर ध्यान लगाया और अपने दिव्य चक्षुओं से जाना कि उसके हृदय में अभी सत्त्व बुद्धि अथवा जीवन के कुछ अवशिष्ट शेष थे। चूडाला ने परकायाप्रवेश की यौगिक क्रिया की। उसने कुम्भ मुनि के भौतिक शरीर को त्याग कर सूक्ष्म शरीर को भी खींच लिया और शिखिध्वज के चित्त में प्रवेश किया। वहाँ उसने चित्त के उस अंग को कम्पायमान किया जहाँ मात्र शुद्ध सत्त्व का अंश था। उसने शरीर के उस भाग को

क्रियाशील और गतिमान बना दिया। फिर वह (कुम्भ मुनि रूपधारी) अपने शरीर में पुनः प्रवेश कर गयी, जैसे कोई पक्षी वृक्ष की टहनी पर बैठ कर फिर अपने घोंसले पर वापस लौट जाता है।

"फिर वह एक पुष्पवाटिका में बैठ कर मधुर राग में सामवेद गान करने लगी। गान सुन कर राजा को बौद्धिक आनन्द का अनुभव हुआ और उसका प्रसुप्त जीवन शनैः-शनैः खिलने लगा, जिस प्रकार सूर्य को देख कर कमल की कलि खिलती है। उसने धीरे-धीरे नेत्र खोले। राजा की सम्पूर्ण देह में नव-जीवन संचार होने लगा। उसने कुम्भ मुनि को अपने समक्ष देख कर उसका यश-गान किया ।

"शिखिध्वज ने कहा- 'आपकी कृपा से मैंने निर्विकल्प समाधि के सुख की अनुभूति की। अब मैंने जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्ति पा ली है। समाधि-सुख की तुलना में स्वर्ग के सुख कुछ नहीं हैं।'

"कुम्भ मुनि ने पूछा- 'हे राजन् ! क्या अब तुम सब प्रकार के कष्टों, संशयों और भ्रमों से पूर्णरूपेण मुक्त हो ? क्या तुमने ब्रह्मानुभूति का शाश्वत सुख प्राप्त कर लिया ? क्या ऐन्द्रिय-विषयों की ओर आकर्षण और विकर्षण दूर हो गया ? क्या तुममें समदृष्टि विकसित हो गयी? पृथ्वी के विषय-भोगों की कामना को क्या तुमने समूल उखाड़ फेंका है?'

"शिखिध्वज ने उत्तर दिया- 'हे सम्माननीय गुरु! आपकी कृपा से मैं सब प्रकार के कष्टों, संशयों, भयों, भूलों, भ्रमों, राग और द्वेष से पूर्णतया मुक्त हूँ। मैं नाश, मृत्यु और रोग से मुक्त हूँ। मैंने सब-कुछ प्राप्त कर लिया है जो भी प्राप्तव्य है। अब मैं अपने में ही पूर्णतया सन्तुष्ट हूँ। मैं परम सन्तोष अनुभव करता है। कुछ भी ज्ञातव्य शेष नहीं है, न ही कुछ प्राप्तव्य शेष है। मेरे लिए कुछ चाहने को, देखने को अथवा सुनने को नहीं है। अब मैं ज्ञानोदय अथवा प्रबोधन के लिए किसी से कुछ नहीं सुनना चाहता। मैं समदृष्टि से सम्पन्न हूँ।'

"तब कुम्भ मुनि और शिखिध्वज जंगलों और पर्वतों में आनन्दपूर्वक रहने लगे। उन्होंने नदियें और झीलें देखी। एक दिन कुम्भ मुनि ने राजा से कहा- 'आज देवलोक में बड़ा पर्व है। मुझे सभा में नारद के समक्ष उपस्थित होना है। विधि द्वारा मेरा प्रस्थान निश्चित है। इसे किसी प्रकार रोका नहीं जा सकता। अप्रतिरोध्य नियम की शक्ति के विरुद्ध कौन जा सकता है? सूर्यास्त पर मैं अवश्य आऊँगा।' उन्होंने राजा को फूलों का गुलदस्ता दिया और चले गये।

"कुम्भ मुनि ने एक बार फिर चूडाला का रूप धारण किया, आकाश द्वारा अपने नगर में पहुँच कर राज्य का काम सँभालने लगी। फिर कुम्भ मुनि का वेष धारण करके आकाश-मार्ग से शिखिध्वज के स्थान पर गयी।

"शिखिध्वज ने कहा- 'हे पूज्य श्रीमन्। आज आप उदास क्यों हैं? आप तो सन्त हो ।'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'सत्य के ज्ञाता, जो विषम परिस्थितियों में दृढ़ और धैर्यवान् नहीं हैं, सच्चे मनुष्य नहीं हैं, बल्कि धोखेबाज हैं। जब तक हम शरीर में हैं, हमें अपने दैहिक अंगों को समुचित रूप से संचालित करते रहना चाहिए। महान् ब्रह्मा और देवता तक दैहिक स्थिति के वश में होते हैं। कोई भी अप्रतिरोध्य परम विधान के विरुद्ध नहीं जा सकता। जिस प्रकार नदियों का जल समुद्र में जा गिरता है, उसी प्रकार समस्त पदार्थों को निश्चित मार्ग से संचालित करने वाली विधि की शक्ति को नियन्त्रित करने की सामर्थ्य किसी में नहीं है।'

"शिखिध्वज बोला- 'यदि ऐसा है, तो फिर आप अपने पर आयी हुई किसी भी परिस्थिति के कारण उदास क्यों हैं?'

"कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया- 'हे राजन्! मेरे साथ घटित आश्चर्यजनक घटना सुनो। तुम वास्तव में आश्चर्यचकित हो जाओगे।'

"चूडाला शिखिध्वज की परीक्षा लेना चाहती थी। वह देखना चाहती थी कि वास्तव में वह ब्रह्मचर्य में स्थित हुआ था या नहीं। उसने राजा को एक घटना सुनायी- 'तुम्हें फूलों का गुलदस्ता देने के अनन्तर में आकाश-मार्ग से यात्रा करके देवलोक में अपने पिता के पास गया और इन्द्र के दरबार में उपस्थित हुआ। फिर मैंने पृथ्वी पर आने के लिए वायु-क्षेत्र में प्रवेश किया। मुझे दुर्वासा ऋषि मिले। मैंने उन्हें कहा-"आप अपने श्याम-वर्ण, मेघ-रूपी वस्त्रों में आवृत्त हो। आप तो ऐसी जल्दी में जाते हुए प्रतीत होते हो मानो एक कामुक स्त्री अपने प्रेमी से मिलने जाती हो।" यह सुन कर मुनि ने क्रोधित हो कर मुझे श्राप दे दिया- "तू हर रात्रि में कामुक स्त्री हो जा।" मैंने मुनि के सामने कैसा लज्जाजनक व्यवहार किया? अब मैं प्रतिदिन रात्रि में स्त्री का शरीर धारण करूँगा। इस बात पर मुझे भारी दुःख हो रहा है।'

"शिखिध्वज बोला- 'आप दुःखी न हों। अप्रतिरोध्य नियम के विरुद्ध कोई नहीं जा सकता। आप तो एक महात्मा हो। आप अपरिवर्तनीय आत्मा हो । अमूर्त आत्मा पर शरीर के इस रूपान्तर का प्रभाव नहीं पड़ सकता। आत्मा तो बदलती ही नहीं।'

"चूडाला दिन कुम्भ मुनि के रूप में और रात्रि स्त्री के रूप में व्यतीत करने लगी।

"एक दिन कुम्भ मुनि बोले- 'मैं कब तक अविवाहित रहूँगी ? मैं तुम्हें अपना पति वरूँगी। तुम मुझे रात्रि को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लो।'

"शिखिध्वज बोला- 'आपको अधिकार है जो चाहो करो।' तत्पश्चात् मन्दार पर्वत पर दोनों की पारस्परिक सहमति से (अगस्त-सितम्बर महीने में) पूर्णिमा को गन्धर्व विवाह सम्पन्न हुआ। अब चूडाला का नाम मदनिका हो गया।

"हर तीसरी रात्रि को ज्यों-ही मदनिका राजा को सोता हुआ पाती, वह अपना पूर्व-रूप धारण कर राज्य के कार्यों को सँभालने चली जाती। कार्य पूरे होने पर राजा के पास वापस आ जाती थी।

"अपनी योग-शक्ति से उसने इन्द्र को शिखिध्वज के समक्ष उपस्थित कर दिया । इन्द्र बोला- 'हे राजन् ! मैं तुम्हारे तप और दैवी गुणों से बहुत प्रभावित हूँ। तुम देवलोक को चलो। स्वर्गीय अप्सराएँ, रम्भा एवं अन्य वहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा में हैं। तुम वहाँ सब प्रकार के भोगों में निमग्न रहना।'

"शिखिध्वज ने उत्तर दिया- 'हे इन्द्र! मैं जहाँ हूँ, मेरे लिए वही स्वर्ग है। मैंने देवताओं के समस्त ऐश्वर्य भोग लिये। अब मैं कुछ नहीं चाहता।'

"शिखिध्वज पूर्ण समचित्तता की स्थिति में रहे। वह पूर्वतः उदासीन थे।

"चूडाला उनकी और परीक्षा लेना चाहती थी। उसने एक कुंज में प्रवेश करके अपनी यौगिक शक्ति के बल से एक प्रेमी उत्पन्न किया। उसने उसे आलिंगन करने का ढोंग रचा। शिखिध्वज ने उसे उद्यान में और कुंजों में खोजा और अन्त में उसे अपने प्रेमी के साथ आलिंगन करते हुए पाया। परन्तु उस पर किंचित् प्रभाव नहीं हुआ। उसे अपनी वृत्ति में कोई परिवर्तन अनुभव नहीं हुआ। उसने क्रोध का कोई चिह्न प्रकट नहीं किया।

"उसके व्यवहार को जानने हेतु चूडाला शिखिध्वज के सामने लज्जित-सी आयी, मानो वह अपने किये हुए व्यवहार के लिए लज्जित हो। शिखिध्वज चूडाला से मधुर वाणी में बोला- 'तुम मेरे पास इतनी जल्दी क्यों आ गयी? हे स्त्री, तुम अपने प्रेमी के पास लौट जाओ और अपनी कामना शान्त करो। यह मत समझो कि मैं इस बात के लिए क्रुद्ध अथवा दुःखी हूँ। मैं सदैव अपने में ही सन्तुष्ट हूँ।'

"मदनिका-रूपी चूडाला बोली- 'मैं एक कमजोर स्त्री हूँ। मैं अज्ञानी हूँ। मैं अपनी वासना पर नियन्त्रण करने में असमर्थ हूँ। स्त्री स्वभाव से ही पुरुष की अपेक्षा दस गुणा कामुक होती है। न निषेध, न पुरुष की धमकियाँ और न ही पावनता का विचार उनकी काम-वृत्ति को रोकने में सफल हो सकते हैं। कृपया मुझे क्षमा करें। क्षमा पवित्रात्माओं का अति-महत्त्वपूर्ण गुण है।'

"शिखिध्वज ने उत्तर दिया- 'प्रिय मदनिका ! जिस प्रकार आकाश में वृक्ष का कोई स्थान नहीं होता, वैसे ही मेरे हृदय में क्रोध के लिए कोई स्थान नहीं है।'

"चूडाला ने शिखिध्वज की इससे अधिक परीक्षा नहीं लेनी चाही। उसे विश्वास हो गया कि उसके पति ने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है और वह क्रोध तथा वासना से पूर्णतया मुक्त है। उसने मदनिका का शरीर त्याग दिया और अपना चूडाला का स्वरूप धारण करके राजा के सामने प्रकट हुई।

"शिखिध्वज बोला- 'हे स्त्री! तुम कौन हो?'

"चूडाला बोली- 'मैं तुम्हारी विधिपूर्वक विवाहित पत्नी चूडाला हूँ। मैंने अपनी यौगिक शक्ति से कुम्भ मुनि और मदनिका का रूप धारण करके तुम्हें कैवल्य के रहस्यों अर्थात् आत्मज्ञान में दीक्षित किया। गलत मार्ग पर चलने पर तुम्हारा विरोध किया और सही मार्ग से तुम्हें च्युत करने के लिए प्रत्येक चालाकी एवं युक्ति का प्रयोग किया। मैंने कई प्रकार से तुम्हारी परीक्षा कर तुम्हारे ज्ञान की गहराई को जाना। अब तुम निर्विकल्प समाधि में प्रवेश कर जाओ और तुम्हें सब-कुछ विस्तृत रूप से विदित हो जायेगा।'

"शिखिध्वज ध्यानस्थ हो कर बैठ गया। उसने राज्य त्यागने के दिन से अन्त में चूडाला से मिलने तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त स्पष्ट रूप से देख लिया।

"चूडाला कहने लगी- 'पूज्य स्वामिन् ! क्या आप सारे संशयों से मुक्त हैं? क्या अज्ञानता से उत्पन्न आपका भ्रम नष्ट हो गया है? क्या आप निज स्वरूप में स्थित हो? क्या आप शाश्वत का सुख अनुभव कर रहो हो ?'

"शिखिध्वज ने उत्तर दिया- 'मैं अब विक्षेपों, दोषों, संशयों और भ्रान्ति से रहित हूँ। मैं विश्व के बन्धनों से मुक्त हो गया हूँ। मैं सर्वदा शान्त रहता हूँ। मुझमें कोई कामना नहीं है। मैं किसी से कुछ अपेक्षा नहीं रखता। मेरे पास अपने लिए चयन करने को कुछ नहीं है। मैं न यह हूँ न वह; मैं विश्व में किसी वस्तु अथवा घटना पर न हर्षित हूँ न दुःखी हूँ। मैं सदैव अपने निज आनन्द-स्वरूप में स्थित रहता हूँ। मेरी शान्ति को कोई भंग नहीं कर सकता। मैं द्वन्द्वों से, भेदभाव और भिन्नताओं से मुक्त हूँ। मैं पदार्थों के विषय में चिन्तन नहीं करता। मैं सर्वव्यापक शुद्ध चैतन्य हूँ। मैं सर्वत्र विद्यमान आकाश की भाँति हूँ, जो समस्त पदार्थों में व्याप्त होते हुए भी निर्लिप्त है।'

"चूडाला बोली-'मेरे पूज्य स्वामिन् ! अब तुम अपने कर्तव्यों को सँभालो-कर्मों का बन्धन नहीं होगा।'

"शिखिध्वज ने स्वीकार किया। तब चूडाला ने उनका अभिषेक किया और राजपदासीन करने की समस्त विधि सम्पन्न की। उसने उन्हें एक रत्न-जड़ित सिंहासन पर बिठाया और दीर्घायु से आशीर्वादित किया। तत्पश्चात् शिखिध्वज और चूडाला एक सुसज्जित हाथी पर सवार हो कर अपने नगर को लौटे। दोनों ओर दो सैनिक दल थे,

जिनके साथ संगीत व नृत्य-मण्डलियों की धुन के साथ बाजे बजाते हुए संगीतकारों के समूह थे। उसने अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ राजभवन में प्रवेश किया। मन्त्री गण, दरबारी और सेवक-समूह द्वारा उनका स्वागत किया गया। उसने एक सहस्र वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् अपनी पत्नी सहित विदेहमुक्ति प्राप्त की।"

अपने गुरु वसिष्ठ जी द्वारा इतनी सुन्दरता से वर्णित कहानी सुन कर श्री राम ने उनसे पूछा- "जिन्होंने अपने को ब्रह्म में लीन कर दिया है और अपने मन का नाश कर दिया है, उनमें सत्त्व के अवशेष कैसे रह सकते हैं? जिस योगी का मन पत्थर के समान भावशून्य हो गया हो और जिसकी देह ऐसे जड़ हो गयी हो जैसे मिट्टी का लोष्ट (ढेला) अथवा लकड़ी का टुकड़ा, उसमें प्राणिक ज्वाला की चिंगारी कैसे अवशिष्ट रह सकती है?"

वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया- "जिस प्रकार फूल और फल बीज में निहित रहते हैं, उसी प्रकार जीवन के तत्त्व अर्थात् सत्त्व के अंश जो बुद्धि का कारण हैं, अदृश्य रूप से हृदय में रहते हैं। जो योगी शान्त रहता है और जो समाधि में मूर्ति अथवा शिला की भाँति अचल रहता है, उसमें बुद्धि की स्फुरणा होती है। यद्यपि जीवन्मुक्त का चित्त नष्ट हो जाता है, फिर भी सूक्ष्म शरीर पूर्णतया नष्ट नहीं होता। उसका चित्त सुख-दुःख से प्रभावित नहीं होता। उसमें पदार्थों के लिए कोई कामना या एषणा नहीं रहती। वह आकर्षण एवं घृणा से रहित है।"

वसिष्ठ जी आगे बोले- "हे राम! इस राजा के पदचिह्नों का अनुसरण करो, जिसने विदेहमुक्ति प्राप्त करने तक राज्य का शासन किया। अपने राजकीय कर्तव्यों का पालन करो । समदृष्टि और सन्तुलित मानस रखो। सुखों के मध्य उदासीन रहो। दुःखों के मध्य चिन्तामुक्त रहो। आसक्ति मत रखो। विषयों की कामना मत करो। संकट और विपत्तियाँ आने पर दुःख मत मानो। तुम पर किसी बात का प्रभाव नहीं होगा। कर्म तुम्हें नहीं बाँधेंगे। तुम्हें मोक्ष प्राप्त हो जायेगा। तुम्हें आत्मा का ज्ञान होगा। तुम शाश्वत सुख एवं परम शान्ति आनन्द अनुभव करोगे।"

इक्ष्वाकु की कथा

राम ने पूछा- "हे सर्वज्ञ महात्मन् ! कृपया मुझे उस मन की विशेषताएँ बताइए जिसने अपने अहं को नष्ट कर दिया हो, जो स्वयं विनष्ट हो चुका हो फिर भी अपना आध्यात्मिक स्वरूप मात्र अवशिष्ट रखता हो?"

वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया- "कामनाएँ, भ्रान्ति, अभिमान, अज्ञान और अन्य अशुद्धियाँ ऐसे व्यक्ति को- जिसने अहं-भाव और मन का नाश कर दिया हो और जिसे आत्मा का ज्ञान हो गया है-इसी प्रकार स्पर्श नहीं कर सकते, जिस प्रकार झील का जल कमल के पत्ते का स्पर्श नहीं कर सकता। अहं-भाव और उससे सम्बन्धित दोष नष्ट हो जाने पर उसके शान्त व दीप्त मुख पर आत्मा की पवित्रता स्पष्ट रूप से प्रकाशमान होती है। उसके चेहरे पर समस्त दैवी गुण झलकते हैं। काम और मोह के बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। वह क्रोध, लोभ और वासनाओं से मुक्त हो जाता है। पाँचों इन्द्रियाँ पूर्णरूपेण उसके नियन्त्रण में रहती हैं। दुःख उसको प्रभावित नहीं करते। सुख उसमें गर्व नहीं लाते हैं। वह प्रत्येक स्थिति और स्थान में चित्त की पूर्ण शान्ति से सम्पन्न रहता है। सबके प्रति उसमें समदृष्टि रहती है। जब उसके शरीर में कष्ट हो और चेहरे पर प्रकट भी होवे तब भी उसका चित्त पूर्णतया शान्त रहता है। वह देवताओं का प्रिय हो जाता है। वह न कभी किसी का विरोध करता है न किसी को ठेस पहुँचाता है। प्रत्येक व्यक्ति उसका सम्मान करता है और उससे प्रेम करता है। विश्व के मिथ्यात्व का उसे स्पर्श नहीं होता । न धन-सम्पत्ति और न ही निर्धनता; न समृद्धि और न ही विपत्ति उसको प्रभावित कर सकती है। वह पूर्णतया उदासीन रहता है। सांसारिकता में डूबे हुए मनुष्य को धिक्कार है, जो परम सत्ता को प्राप्त करने हेतु कामना नहीं करता, जो आत्मज्ञान द्वारा उस परम सत्ता को प्राप्त नहीं करता, जो उसे इस विश्व की

समस्त कठिनाइयों से बचाने में सहायक हो सकती है। आत्मा का ज्ञान समस्त सांसारिक विपत्तियों के मध्य मनुष्य की रक्षा करता है।'

"जो व्यक्ति इस संसार-रूपी विशाल समुद्र में दुःखद पुनर्जन्मों की लहरों पर विजय के द्वारा भवसागर को पार करके शाश्वत सुख प्राप्त करना चाहता है, उसे सदैव यह खोज करनी चाहिए कि मैं कौन हूँ। यह विश्व क्या है? ब्रह्म अथवा परम सत्ता की प्रकृति क्या है? भौतिक सुख किस काम के हैं? ऐसी विवेकपूर्ण खोज अन्तिम मोक्ष पाने का सर्वोत्तम साधन है।

"हे राम! तुम जानो कि तुम्हारे वंश के प्रथम संस्थापक प्रसिद्ध राजा इक्ष्वाकु ने किस प्रकार मोक्ष प्राप्त किया था।

"जब यह राजा अपने साम्राज्य पर शासन कर रहा था, तो एक बार एकान्त के क्षणों में मनुष्यता की स्थिति पर विचार करने लगा। वह अपने मन में सोचने लगा कि क्षीणता, रोग और मृत्यु का, दुःख-सुख तथा कष्टों का भी, और इसी प्रकार इस मृत्युलोक में समस्त जीवों में होने वाले दोषों का क्या कारण हो सकता है? उसने दीर्घ काल तक इन विचारों पर मनन किया, परन्तु कोई समाधान नहीं मिला।

"सर्वप्रथम वह मनु के पास गया जो ब्रह्मलोक से आये, उन्हें अभिवादन करके इक्ष्वाकु बोले- 'हे दया के सागर में किस प्रकार इस संसार के कष्टों से अपने को छुड़ा सकता हूँ? मेरा यथार्थ स्वरूप क्या है? मैं किस प्रकार अमरता अथवा अनन्त को प्राप्त कर सकता हूँ? इस सृष्टि का मूल कहाँ है? उसका स्वरूप क्या है? कब और किस प्रकार यह अस्तित्व में आयी ? मैं किस प्रकार इस सृष्टि के विषय में अपने सशय तथा भ्रममूलक विचारों से मुक्त हो सकता हूँ? मैं इस ससार से किस प्रकार मुक्ति पा सकता हूँ?'

"मनु ने उत्तर दिया- 'यह सब-कुछ जो तुम देखते हो, सत्य नहीं है। ये सब तुच्छ ब्रह्माण्ड वास्तव में नहीं है। वे प्रतीत होते हैं। वे बादलों में किले और रेगिस्तान की मृगमरीचिका में जल के समान हैं। मन भी असत्य है। आत्मा अथवा ब्रह्म-जो मन और इन्द्रियों की पहुँच से परे है-अक्षुण्ण, असीम और आकाश से भी सूक्ष्म है, वह सदैव विद्यमान है। वही एक सत्य है। समस्त दृश्यमान् पदार्थ आत्मा-रूपी दर्पण में छाया मात्र हैं। ब्रह्म की कुछ शक्तियों ने मिल कर प्रकाशमान् लोकों का रूप धारण कर लिया और अन्य शक्तियों ने जीवधारियों का रूप धारण कर लिया। अन्य देवलोक बन गये । बन्धन अथवा मुक्ति जैसी कोई वस्तु नहीं है। जिस प्रकार समुद्र का जल लहरें, बुलबुले, झाग आदि रूपों में प्रकट होता है, उसी प्रकार केवल ब्रह्म ही विभिन्न प्रकार के पदार्थों सहित इस बहुरूपीय संसार के रूप में प्रकाशमान् है। एक अद्वैत ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है। वही एकमात्र सत्य है। वही एक जीवन्त सत्य है। अतः हे इक्ष्वाकु ! बन्धन और मोक्ष के अपने विचार को छोड़ो। ईश्वर करे, तुम सब प्रकार के भयों से मुक्त हो कर एक शिला की भाँति स्थिर और दृढ़ हो जाओ !

"'यदि व्यक्ति अपने विचारों अथवा संकल्पों से जुड़ा रहे, तो वह जीव अर्थात् वैयक्तिक आत्मा बन जाता है, जिस प्रकार सागर का जल तरंग अथवा झाग बन जाता है। तब सदैव वह जन्म-मरण के चक्र में घूमता रहेगा। दुःख और सुख मन के धर्म हैं-आत्मा के नहीं। जीवों में अपने पूर्व-जन्म के संस्कार रहते हैं; वे शुभ और अशुभ कर्म करके तदनुसार सुख-दुःख का फल भोगते हैं। जिस प्रकार राहु का अदृश्य सिर चन्द्रग्रहण के समय दृश्यमान् हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा की वृत्ति के अनुसार क्रियाशील मन, हमें दृश्यमान् होता है और सुख-दुःख का अनुभव करता है। इस अमर आत्मा को आत्मज्ञान के ग्रन्थों और आध्यात्मिक गुरुओं के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसे अपनी आत्मा के द्वारा और बुद्धि के द्वारा अन्तर्प्रज्ञा से पहचाना जा सकता है। जिस प्रकार यात्री किसी विशेष वस्तु या स्थान से बिना किसी लगाव या आसक्ति के भ्रमण करते हैं, उसी प्रकार तुम्हें अपने शरीर और इन्द्रियों से निर्लिप्त रहना चाहिए। तुम अपनी देह और अंगों से प्रेम अथवा घृणा मत करो। तुम अपनी देह अथवा इन्द्रियों को

कष्ट मत दो। शरीर, इन्द्रियों और समस्त पदार्थों की ओर उदासीन भाव रखो। शरीर और अंग कमाँ का परिणाम हैं। उन्हें रोका नहीं जा सकता। वे अनिवार्य रूप से अस्तित्ववान् होंगे ही। पदार्थों के लिए कामना छोड़ो। शान्ति प्राप्त करके ब्रह्म हो जाओ।

"आत्मा-स्वरूप 'मैं' को नाशवान् देह से जोड़ना संसार में हमारे बन्धन का कारण है। अतएव मोक्ष के इच्छुक साधकों को यह विचार कदापि नहीं रखना चाहिए। परन्तु यह दृढ़ विश्वास कि 'मैं सर्वव्यापी आत्मा अथवा ब्रह्म हूँ', इस विश्व में मनुष्यों को बन्धन से छुड़ाने में समर्थ है। जिस प्रकार कोई माँ अपने खोये बच्चे की खोज में व्याकुल होती है-जो बच्चा उसी के कन्धों पर सो रहा है, उसी प्रकार सब लोग बाह्य नाशवान् पदार्थों में सुख ढूँढ़ते हुए दुःखी होते हैं, जब कि वस्तुतः वह उन्हें अपने ही भीतर सरलता से मिल सकता है। जिस प्रकार सागर का जल लहरों से विक्षिप्त होता है, उसी प्रकार चित्त असंख्य संकल्पों से चलायमान होता है। हे राजन्! यदि संकल्प नष्ट हो जायें, यदि तुम अपने चित्त को आत्मा में स्थित कर लो, तो तुम परम शान्ति और शाश्वत सुख का अनुभव करोगे और इस भीषण संसार-रूपी समुद्र में टकराती हुई लहरों के मध्य भी अचल बने रहोगे।

'यह मिथ्या संसार ब्रह्म से उद्‌भूत होता है। माया रहस्यमयी है। यह मनुष्यों को अपनी ही आत्मा को प्राप्त करने से भ्रमित करती है। यह विश्व माया के प्रभाव से ठोस सत्य प्रतीत होता है। जिन्हें आत्मज्ञान नहीं है, वे इस विश्व में दुःख पाते हैं। जो व्यक्ति विश्व को चित्रफलक पर चित्रित जैसा मान कर अप्रभावित और निष्काम रहते हुए अपनी आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है, उसने मानो एक अभेद्य कवच पहन रखा है। वह व्यक्ति कितना सुखी है, जिसके पास कुछ भी नहीं है-न धन अथवा अन्य साधन; फिर भी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के कारण सब-कुछ है। सारी कामनाओं का नाश कर दो। ब्रह्म का चिन्तन करो और जीवन्मुक्त हो जाओ। इस तुच्छ 'मैं' को नष्ट कर दो। इस नाशवान् शरीर से अपने को एकरूप मत करो, बल्कि सर्वव्यापक परम सत्ता से एकरूप बनो। अभाव (अनस्तित्व) के विचार को विकसित करके समस्त पदार्थों पर निराकार और शुद्ध चैतन्य रूप में ध्यान करो। यह विचार कि 'यह आनन्ददायक है', 'वह दुःखदायक है', 'यह अच्छा या बुरा है' आदि का बीज है। यदि समदृष्टि-रूपी अग्नि से यह बीज भस्म कर दिया जाता है, फिर कष्टों के लिए स्थान कहाँ रहेगा? क्रियाशील बन कर अभाव-रूपी असि (तलवार) धारण करो। समदृष्टि की कुल्हाड़ी से प्रिय और अप्रिय तथा राग-द्वेष की भावनाओं को काट डालो।

'कर्मकाण्ड के उलझे हुए जंगल को, कर्मों के गुण अवगुणों के उपेक्षाभाव-रूपी अस्त्र से साफ कर दो। अभाव-रूपी तलवार द्वारा समस्त विचारों और पदार्थों का नाश कर दो। अपने मन से समस्त भेदभाव दूर करके विवेक विकसित करो। आत्मा के परम आनन्द को प्राप्त करो। पूर्ण शान्त रहो। संसार की सारी चिन्ताओं एवं भयों से मुक्त हो जाओ। जिसने इस तुच्छ अहं तथा समस्त कामनाओं और सकल्पों को नष्ट कर दिया है और जिसने सारे मिथ्या भेदभावों को पिघला डाला है, वह ब्रा के शाश्वत सुख को भोगेगा। वही कष्टों और चिन्ताओं और टु खों से मुक्त होगा। हे राजन् ! उस परिपूर्ण शान्त, निर्मल और अपरिवर्तनीय आत्मा पर सदैव चिन्तन करो, जो सबमें समान है।'

"मनु बोलते हैं-'ज्ञान की सप्त भूमिकाएँ हैं। प्रथम भूमिका में आत्मज्ञान शास्त्रों के गहन अध्ययन और सत्संग तथा निष्काम शुभ कृत्यों द्वारा ज्ञान का विकास करें। यह 'शुभेच्छा' ज्ञान की प्रथम भूमिका है। यह विवेक-रूपी जल से मन की सिंचाई कर उसका संरक्षण करता है। इस भूमिका में ऐन्द्रिक विषयों के प्रति अनाकर्षण अथवा उदासीनता होती है। प्रथम भूमिका ही अन्य भूमिकाओं का आधार है।

'शुभेच्छा से दूसरी दो भूमिकाएँ- 'विचारणा' और 'तनुमानसी' का निर्माण होता है। निरन्तर आत्म-विचार अथवा आत्मानुसन्धान द्वितीय भूमिका है। तृतीय भूमिका तनुमानसी है। यह विचारों के प्रति विशेष उदासीनता से उत्पन्न होती है। मन एक डोरे की भाँति पतला हो जाता है। तनु का अर्थ है-पतला अर्थात् डोरे की भाँति मन की स्थिति, इसलिए तनुमानसी कहलाती है। तृतीय भूमिका को असंग-भावना भी कहते हैं। इस तृतीय भूमिका में

साधक सारे आकर्षणों से मुक्त रहता है। यदि कोई तृतीय भूमिका में पहुँच कर मृत्यु को प्राप्त होता है, तो वह दीर्घ काल तक स्वर्ग में रह कर ज्ञानी-रूप में पृथ्वी पर पुनः जन्म लेगा। उपर्युक्त तीन भूमिकाएँ जागृत अवस्था में सम्मिलित की जा सकती हैं।

"'चतुर्थ भूमिका है- 'सत्त्वापत्ति' । यह भूमिका समस्त वासनाओं को जड़ से उखाड़ देगी। यह स्वप्नावस्था में सम्मिलित की जा सकती है। विश्व स्वप्न की भाँति दृष्टिगत होता है। इस चतुर्थ भूमिका में पहुँचने पर मनुष्य सृष्टि की समस्त वस्तुओं को समदृष्टि से देखता है।

" 'पंचम भूमिका 'असंसक्ति' है। इसमें विश्व के सारे पदार्थों के प्रति पूर्णरूपेण अनासक्ति होती है। इस अवस्था में जागृति अथवा सुषुप्ति अथवा कोई उपाधि नहीं रहती। यह जीवन्मुक्त अवस्था है, जिसमें आनन्द-स्वरूप, विशुद्ध ज्ञान से परिपूर्ण ब्रह्म की अनुभूति होती है। यह भूमिका सुषुप्ति में आती है।

'छठी भूमिका 'पदार्थाभावना' है। इसमें सत्य का ज्ञान है। सप्तम भूमिका है 'तुरीय' अथवा उच्चतम चेतना की स्थिति। यह मोक्ष है। इसे तुरीयातीत भी कहते हैं। इसमें संकल्प नहीं होते । सारे गुण लुप्त हो जाते हैं। यह मन और वाणी की पहुँच के बाहर है। इस सप्तम भूमिका में विदेहमुक्ति प्राप्त हो जाती है।

'जीवन्मुक्त अहंभाव, कामनाओं, गुणों और आसक्ति से रहित होता है। उसकी दृष्टि सम होती है। वह पूर्ण शान्ति और शाश्वत सुख का अनुभव करता है। अतएव वह कभी मन में दुःखी नहीं होता। चाहे कार्य में लगा हो या कार्यमुक्त हो, चाहे कुटुम्ब में रहता हो या एकाकी जीवन यापन करता हो, जो व्यक्ति ब्रह्म अथवा अमर आत्मा के साथ अपने को एकाकार कर लेता है और जिसे इस संसार में कोई डर, चिन्ता या दुःख नहीं है, वह इसी जीवन में मुक्त माना जाता है। जो अपने को आदि और अन्त रहित, नाश और मृत्यु से रहित एवं शुद्ध चैतन्य की प्रकृति का मानता है, वह सदैव शान्त और अपने में ही सन्तुष्ट रहता है, उसे दुःख का कोई कारण नहीं हो सकता। जो इस प्रकार के ज्ञान से छुटकारा पा लेता है कि 'यह मैं हूँ, वह अन्य है; यह मेरा है और वह अन्य का है' आदि, वह शीघ्र ही आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है।

'वासनाओं के माध्यम से ऐन्द्रिक-विषयों के भोग तुरन्त आनन्द प्रदान करते हैं। परन्तु जब वह पदार्थ नष्ट हो जाता है, तो कष्ट की अनुभूति होती है। जब वासनाएँ पूर्णरूपेण विनष्ट हो जायें अथवा थोड़ी-थोड़ी करके क्षीण हो जायें, तो पदार्थों में कोई आनन्द नहीं आयेगा। जनसामान्य में किसी वस्तु का भाव अथवा अभाव सुख-दुःख का कारण होता है। सुख और दुःख अभिन्न हैं। सुख दुःख का कारण है। यदि वासनाएँ क्षीण हो जायें, तो कर्मों से सुख-दुःख की सर्जना नहीं होगी। वे जले हुए बीजों की भाँति हो जाते हैं। जिसमें पदार्थों के लिए आकर्षण नहीं है, उसका चित्त शान्त होगा। फिर उसके संचित और आगामी कर्म-रूपी रूई की फली, ज्ञान-रूपी चक्रवात के द्वारा विनष्ट हो कर शरीर रूपी रूई के धागे से नवद्वारों द्वारा बिखर जायेंगी। सारे विचार लुप्त हो जायेंगे। मन में ज्ञान-रूपी अंकुर दिन-प्रतिदिन स्वतः ही विकसित होता जायेगा। जिस प्रकार उपजाऊ भूमि में वपन किया हुआ बीज शीघ्र उग कर धान के पौधे के रूप में प्रस्फुटित हो जाता है। फिर आत्मा अपने आद्य विशुद्ध स्वरूप में तेजस् के साथ प्रकाशमान् होगी । हे राजन् ! तू अपने को शुद्ध, अद्वैत ब्रह्म जान, जहाँ न विचार हैं न वासनाएँ ।'

"मनु कहते रहे-'आत्मा मूलतः स्वाभाविक रूप से आनन्द से परिपूर्ण है, परन्तु अज्ञानता के कारण वह व्यर्थ ही भौतिक सुखों की कामना का पोषण करती है। इसलिए इसका नाम जीव अर्थात् वैयक्तिक आत्मा है, जो दुःख पाता है। इच्छाएँ अविवेक के कारण उत्पन्न होती हैं। विवेक उदय होने पर वे लुप्त हो जायेंगी। इच्छाओं के नष्ट होने पर जीव की स्थिति लुप्त हो जाती है। आत्मा परमात्मा के सात एकरूप हो जाती है।

'अतएव सांसारिक भोगों के लिए कामनाओं को तुम्हारी आत्मा को स्वर्ग और नरक की ओर ऊपर-नीचे ले जाने के लिए अनुमति मत दो। जिस प्रकार रस्सी से बंधी हुई बाल्टी कुएँ से जल खींचते समय बारम्बार ऊपरी खींची और नीचे डाली जाती है। जिनमें कर्तापन एवं स्वामित्व का विचार होता है, जो 'मैं, वह, यह, मेरा, तेरा' आदि भेदों से भ्रमित हैं, वे बाल्टी की भाँति ही उत्तरोत्तर नीचे धँसने वाले हैं। मनुष्य जितना ही स्वार्थी होता है, उतना ही निम्नतर और नीच होता जाता है।

" 'सत्य अथवा ब्रह्म-रूपी चट्टान पर दृढ़ता से खड़े रहो। यह विचार करो कि यह ब्रह्माण्ड तुम्हारा ही परिपूर्ण रूप है। अपनी आत्मा पर दृढ़ता से पकड़ रखो। जब तुम एकत्व की ज्ञानदृष्टि प्राप्त कर लोगे, तब तुम पुनर्जन्मों से छुटकारा पा कर परम सत्ता से एकाकार हो जाओगे। तब तुम वह सब-कुछ कर सकोगे, जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश के द्वारा होता है। जब तुम्हारे मन का असीम उत्थान एवं प्रसार होगा, तब वह दिव्य मन के साथ मिल कर एकरूप हो जायेगा। आत्मज्ञान होने पर तुम्हें भी वही स्थिति प्राप्त हो जायेगी जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र को प्राप्त हुई। प्रकृति की समस्त क्रियाएँ ब्रह्म की लीला मात्र हैं। जो आत्मा का शाश्वत आनन्द भोगता है, वह अनुपम और विशिष्ट है। उसके साथ किसी की तुलना नहीं की जा सकती।

'इस विश्व का न अस्तित्व है, न अभाव है। न यह आत्मा की प्रकृति का है, न अनात्मा की। न यह खाली है न भरा। ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर माया विलुप्त हो जाती है। जन्म और मृत्यु से मुक्ति मोक्ष है। मोक्ष ब्रह्म है। मोक्ष में न समय है न दूरी। उसमें कोई स्थिति नहीं है, न आन्तरिक न बाह्य। यदि अहंकार अथवा व्यक्तिगत अस्तित्व का नाश हो जाये, तो मोक्ष प्राप्त हो जाता है। विचारों की समाप्ति मोक्ष है। माया का अन्त मोक्ष है। ब्रह्म-साक्षात्कार को मोक्ष अथवा मुक्ति कहते हैं।

'जो इस बात के प्रति उदासीन है कि वह क्या खाता है, क्या पहनता है और कहाँ सोता है, वही अखिल विश्व में सम्राट् की भाँति प्रकाशमान् होगा। अपने-आपको जाति और जीवन-स्तर तथा विश्व-भर के धर्मों से मुक्त करो, जैसे सिंह अपने को लोहे के पिंजरे से मुक्त कर लेता है। संसार का बोझ हल्का करो। उस निर्मल पद को प्राप्त करो जो अक्षुण्ण है। पूर्णरूपेण शान्त हो कर पुनर्जन्म से छुटकारा पाओ। तब तुम पूर्ण समता एवं शान्त चित्त सहित शाश्वत ब्रह्मानन्द का अनुभव करोगे।

'ऐसा व्यक्ति जीवन्मुक्त है। वह कर्म फल के प्रति उदासीनता रखेगा। चाहे मनुष्यों के द्वारा सम्मान मिले या अपमान, वह न उनकी प्रशंसा करता है न उनसे अप्रसन्न होता है। उसका शरीर कट भी जाये, तो उसे कष्ट का अनुभव नहीं होता । न किसी को कष्ट देता है न किसी के द्वारा कष्ट पाता है। वह किसी भी प्रकार की आसक्ति से रहित है। वह आदेशों और निषेधों से परे है, फिर भी वह वैदिक नियमों के अनुसार व्यवहार करता है। वह संसार में एक सामान्य व्यक्ति की भाँति कर्म करता हुआ भी कर्तृत्व-भाव नहीं रखता । वह सांसारिक सम्बन्धों से मन में पूर्णतः असम्बद्ध रहता है। वह संसार के कल्याण निमित्त कार्य करता है। वह किसी के लिए भय का कारण नहीं बनता और न ही वह स्वयं किसी से भय मानता है। ऐसे व्यक्ति का सम्मान और पूजा होनी चाहिए । ऐसा व्यक्ति सदैव परम सत्ता में विश्राम करता है, चाहे वह बनारस आदि तीर्थ-स्थान पर मृत्यु को प्राप्त हो अथवा चाण्डाल या किसी जाति-बहिष्कृत के घर में।

'जो ब्रह्म-पद को प्राप्त हो गये हैं, ऐसे महिमाशाली व्यक्ति को तुम्हें महासम्मान के साथ पूजना चाहिए। वे पृथ्वी पर साक्षात् देवता हैं। जो पुनर्जन्मों को नष्ट करके मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि ऐसे महान् आत्मा की स्तुति करें, नमन करें, पूजा-उपासना करें और उनकी महिमा का गान करें। उन्हें उनके पास श्रद्धापूर्वक एवं भक्तिभावपूर्ण हृदय से बहुधा जाना चाहिए। उन्हें पूर्ण सम्मान और नम्रतापूर्वक तथा भक्तिभाव से बारम्बार नमन करना चाहिए। इस जीवन्मुक्त महामहिम मानवों को भक्तिभाव से एवं प्रेम से सेवा समर्पित करने

से जो लाभ प्राप्त होगा, वह यज्ञ, तप, भेंट अथवा व्रतादि से भी नहीं होगा। इस महान् आत्माओं की सेवा से चित्त-शुद्धि शीघ्र होती है।'

"मनु के नाम से अभिहित, भगवान् ब्रह्मा, इक्ष्वाकु को इस प्रकार यथार्थ प्रेम का पाठ पढ़ा कर अपने स्वर्गीय स्थान ब्रह्मलोक को चले गये। मनु द्वारा बताये हुए मार्ग पर चल कर इक्ष्वाकु ने मोक्ष का अक्षुण्ण पद प्राप्त किया और ब्रह्मानन्द के सुख को भोगा।"

ॐ तत्सत्!

सभी प्राणियों को शान्ति प्राप्त हो!
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

परिशिष्ट १

श्री सत्यनारायण व्रत

स्कन्दपुराण से उल्लिखित

एक बार सनक एवं उनके समान अन्य महान् ऋषि, जो नैमिषारण्य में एकत्रित हुए थे, उन्होंने विद्वान् एवं विनम्र सूत जी से पूछा- "कौन-सा व्रत रखने से हम मनवांछित फल पा सकते हैं? हे महात्मन् ! हम आपसे जानना चाहते हैं, कृपया हमें बताइए।"

मुनियों के शब्द सुन कर सूत जी बोले-"ध्यान से मेरी बात सुनो।" उन्होंने निम्नांकित कथा सुनायी

प्रथम भाग

दीर्घ काल पूर्व नारद मुनि ने यही प्रश्न भगवान् कमलापति से पूछा था, जो अभी तुमने पूछा है। अब सुनो कि भगवान् ने उन्हें उस समय क्या उत्तर दिया। महान् योगी, सर्वलोककल्याणार्थ दृढ़ संकल्पित सन्त नारद एक बार मृत्युलोक में पहुँचे।

वहाँ उन्होंने लोगों को अनेक प्रकार के दुःखों से दुःखी पाया, विभिन्न गर्भों में जन्म लेने और अपने कर्मों के फलस्वरूप अवर्णनीय विपत्तियाँ अनुभव करते हुए पाया। उन्हें दुःखी मानवों पर दया आयी। वे उन्हें शान्ति प्राप्त कराना चाहते थे और इसीलिए इस समस्या पर चिन्तन करने लगे कि किस प्रकार लोगों को कष्टों और विपत्तियों से मुक्त किया जाये। अपने मन में जन-कल्याण के ये विचार लिये हुए वे विष्णुलोक गये।

वहाँ उन्होंने शंख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला धारण किये निर्मल, द्युतिमान् चतुर्भुजी विष्णु भगवान् के पवित्र दर्शन किये। उन स्वामियों के स्वामी भगवान् की वे इस प्रकार स्तुति करने लगे:

हे भगवान् ! तुम्हें नमस्कार है!

तुम्हारा पवित्र रूप मन और वाणी से परे है,
तुम असीम शक्ति हो,
तुम आदि, मध्य और अन्त से रहित हो,
तुम निर्गुण हो और सर्वगुण सम्पन्न हो,
तुम आद्य सत्ता हो,
तुम अपने भक्तों के दुःखहर्ता हो,
बारम्बार तुमको नमस्कार है !

नारद की स्तुति सुन कर, भगवान् विष्णु उनसे बोले- "हे सन्त नारद! किस शुभ लक्ष्य से तुम यहाँ आये हो? तुम्हारे मन में क्या पवित्र विचार स्थित है? तुम मुझे अपनी कामना बताओ, तो मैं उसे पूर्ण करूँ।"

नारद जी बोले- "हे भगवन्! नश्वर भूलोक के सभी जीव अपने अशुभ कर्मों के फलस्वरूप असंख्य संकटों तथा विभिन्न गर्भों में जन्म से कष्ट पाते हैं। हे लोकों के स्वामी! मुझ पर कृपा करें, मैं आपसे उस सरल उपाय के विषय में सुनने को अत्यधिक उत्सुक हूँ, जिससे मरणशील प्राणी अपने संकटों से मुक्त हो सके।"

तब पूर्ण कृपालु भगवान् बोले- "हे प्रिय ! तुमने सुन्दर प्रश्न किया है। सब लोकों के कल्याण की तुम्हारी यह पवित्र कामना सचमुच प्रशंसनीय है। प्रिय नारद! मैं तुम्हें उपाय बताऊँगा, जिससे मनुष्य भ्रम-जाल से मुक्त हो जायेगा।

"एक व्रत है जो मनुष्यों और देवताओं-दोनों के लिए प्राप्त करना कठिन है। हे प्रिय बालक! तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो, इसलिए मैं तुम्हारे लिए इस पर प्रकाश डालता हूँ। यह सत्यनारायण व्रत है। जो विधिपूर्वक इस व्रत को सम्पन्न करेंगे, उन्हें सदैव परम शान्ति, शाश्वत सुख और अमरता की प्राप्ति होगी, यहाँ भी और परलोक में भी।"

भगवान् के अमृतपूर्ण वचनों को सुन कर नारद मुनि बोले-"सत्यनारायण व्रत करने वाले को क्या फल मिलता है? व्रत करने की क्या विधि है? किसने यह व्रत अब तक किया है? यह किस प्रकार करना है? कृपया मुझे स्पष्ट रूप से यह सब बताइए।"

भगवान् बोले- "यह व्रत कष्ट और दुःखों को नष्ट करता है। मनुष्य की भौतिक समृद्धि को बढ़ाता है। शान्ति और पवित्रता विकसित करता है और वंश-परम्परा को बनाये रखता है। इस व्रत के पालक को सदैव सर्वत्र विजय प्राप्त होगी। युद्ध का सामना करने पर अथवा निर्धनता के श्राप से पीड़ित होने पर अथवा विपत्ति में फँसने पर या शारीरिक अथवा मानसिक अथवा आत्मिक संकट पड़ने पर यह व्रत करना मनुष्य के लिए श्रेयस्कर होता है।

"हे योग्य मुनि! अपने साधन और परिस्थिति के अनुरूप यह व्रत महीने में अथवा वर्ष में एक बार किया जा सकता है। यह किसी भी शुभ दिन जैसे पूर्णिमा या एकादशी को करना चाहिए- विशेषकर वैशाख, माघ, श्रावण अथवा कार्तिक महीने में।

"व्रत करने वाले प्रातः जल्दी उठ कर स्नानादि और नित्य-कर्मों से निवृत्त हो। भक्तियुक्त मन से यह संकल्प करें-' हे स्वामियों के स्वामी, सत्यनारायण! आपकी कृपा के लिए आकांक्षा करते हुए मैं यह व्रत आरम्भ कर रहा हूँ।' उसे सदा की भाँति मध्याह्न और सायंकालीन सन्ध्या करनी होती है। एक बार फिर स्नान करके रात्रि के आरम्भ पर, उसे पूजा प्रारम्भ करने हेतु तैयार हो जाना चाहिए।

"पूजा का स्थान बहुविध सजावट से प्रकाशमान् होना चाहिए। पवित्र करने के लिए पूजा-स्थान को गाय के गोबर से लीपना चाहिए। फिर विभिन्न रंगों से पवित्र रंगोली चित्रित करके उस पवित्र स्थान पर एक नया वस्त्र बिछाना चाहिए। वस्त्र पर चादर बिछा कर बीच में कलश रखा जाना चाहिए। कलश चाँदी, ताँबा या पीतल का हो सकता है अथवा मिट्टी का भी हो सकता है, परन्तु इस मामले में कंजूसी न करें। कृपण हुए बिना अपनी स्थिति के अनुसार कलश रखना चाहिए। पवित्र कलश पर एक नया वस्त्र ढकना है।

"हे पावन मुनि! वस्त्र पर सत्यनारायण की मूर्ति रखनी होती है। यह विग्रह सोने का होना चाहिए - एक, आधा या चौथाई माशे की अपने साधनों के अनुसार। विग्रह को पंचामृत में स्नान कराना होता है, फिर मण्डप में रखा जाता है। प्रारम्भ में विघ्नेश्वर, लक्ष्मी, विष्णु, शिव-पार्वती, नवग्रहों (सूर्य देव आदि), आठ दिशाओं (इन्द्र आदि) की तथा आधि और प्रत्याधि देवताओं का पूजन करना चाहिए।

"सर्वप्रथम कलश में वरुणदेव की पूजा की जानी चाहिए। तत्पश्चात् कलश के उत्तर की ओर पवित्र जल छिड़कते हुए मन्त्रोच्चारण के साथ विनायक आदि पंचदेवों की स्थापना करनी चाहिए। इन देवताओं का पूजन करना है।

"इसी प्रकार पवित्र हृदय से, अष्ट दिक्पालों (इन्द्र आदि) को यथास्थान स्थापित करके उनका पूजन करना चाहिए। यह पूजन समाप्त होने पर कलश पर स्थापित सत्यनारायण भगवान् की मूर्ति का पूजन आरम्भ किया जा सकता है।

हे मुनि! चारों वर्णों के स्त्री-पुरुष यह व्रत कर सकते हैं। ब्राह्मणों को पौराणिक उच्चारण और वैदिक मन्त्रों के साथ पूजन करना चाहिए एवं अन्य पौराणिक मन्त्रों के उच्चारण से भगवान् की पूजा कर सकते हैं।

"परम श्रद्धा और भक्ति से युक्त जन यह व्रत किसी भी दिन सायंकाल में कर सकते हैं।

"व्रतकर्ता को व्रत प्रारम्भ करने से पूर्व ब्राह्मणों तथा सम्बन्धी जनों को आमन्त्रित करना चाहिए। केला, घी, गाय का दूध, गेहूँ अथवा चावल का आटा और चीनी अथवा गुड़-इन सब वस्तुओं की उचित मात्रा ले कर प्रसाद तैयार किया जाना चाहिए। प्रसाद भगवान् को अर्पित करना है।

"भोग की समाप्ति पर ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए। तत्पश्चात् भगवान् की कथा सुननी चाहिए। अन्त में व्रतकर्ता को अतिथि ब्राह्मणों के साथ भोजन करना चाहिए। प्रसाद अत्यन्त श्रद्धा और भक्ति के साथ लेना चाहिए।

"भगवान् सत्यनारायण के प्रति प्रेम के प्रतीक रूप में, नृत्य और संगीत आदि का आयोजन किया जा सकता है।

"यह व्रत संसार जनों के लिए निश्चयपूर्वक अपनी इच्छा पूर्ण करने हेतु वरदान है और यही कलियुग में मनुष्य के लिए अपनी मनोकामना पूर्ति का सर्वाधिक सरल उपाय है।"

इस प्रकार स्कन्दपुराण में वर्णित सत्यनारायण व्रत कथा का प्रथम भाग समाप्त होता है।

द्वितीय भाग

हे महान् मुनियो! मैं आपको इस व्रत को करने वालों की कथा कहता हूँ। एक बार बनारस में एक ब्राह्मण था। वह अति-निर्धन और भूख से पीड़ित था। अतः वह अपनी क्षुधा शान्त करने हेतु एक से दूसरे स्थान को भ्रमण करता था।

भक्तों को प्यार करने वाले भगवान् ब्राह्मण के कष्टों को समझ कर, एक बूढ़े ब्राह्मण के रूप में उसके समक्ष प्रकट हुए और उससे बोले- "हे ब्राह्मण! तुम दुःखी क्यों हो और तुम किसलिए भटक रहे हो? मैं सब बात विस्तार से जानना चाहता हूँ।"

ब्राह्मण कहने लगा- "हे भगवन्! मैं एक ब्राह्मण हूँ। बहुत निर्धन हूँ। मैं भिक्षार्थ भ्रमण कर रहा हूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं किस प्रकार अपनी निर्धनता दूर करूँ। कृपया मुझ पर दया करके मुझे उपाय बतायें।"

बूढ़ा ब्राह्मण बोला-"भगवान् सत्यनारायण स्वयं विष्णु हैं। वह हमारी सभी मनोकामनाएँ पूरी करने वाले हैं। हे विप्र ! यह व्रत करो जो सर्वश्रेष्ठ है और जिसे करने से तुम सारे कष्टों से छूट जाओगे और मरणशीलता से भी मुक्त हो जाओगे।"

तत्पश्चात् वृद्ध ब्राह्मणवेशधारी भगवान् सत्यनारायण ने उस विप्र को विधि बतायी और तुरन्त अन्तर्धान हो गये।

फिर निर्धन ब्राह्मण ने वृद्ध ब्राह्मण द्वारा बतायी विधि से सत्यनारायण व्रत करने का संकल्प लिया। दूसरे दिन अत्यधिक खुशी के कारण उसे रात-भर नींद नहीं आयी। प्रातः जल्दी उठ कर स्नानादि नित्य-कर्मों से निवृत्त हुआ और पुनः सत्यनारायण का व्रत करने का निश्चय करके भिक्षा माँगने को निकला।

उस दिन उसने प्रचुर धन इकट्ठा किया। अपने मित्र, सम्बन्धियों और कुछ ब्राह्मणों को आमन्त्रित करके उपयुक्त ढंग से सत्यनारायण का व्रत किया।

व्रत की महिमा के फलस्वरूप ब्राह्मण समस्त सांसारिक दुःखों से मुक्त हो गया और धन-सम्पत्ति प्राप्त की और अत्यन्त सुखी हो गया। तबसे वह प्रति माह व्रत करने लगा। इस व्रत के करने से उसे न केवल भौतिक समृद्धि की प्राप्ति हुई, बल्कि अन्त में मोक्ष भी प्राप्त हुआ।

जो मनुष्य किसी भी समय यह व्रत करता है, वह तुरन्त सभी प्रकार के संकटों से मुक्त हो जाता है।

हे मुनियो! भगवान् ने इस व्रत के विषय में जो कुछ नारद मुनि को बताया था, वही मैंने आपको वर्णन किया है। आप और क्या जानना चाहते हो?

(ऋषि बोले- "हे सूत जी! हमें उस व्यक्ति के विषय में बताइए, जिसने ब्राह्मण से इस व्रत के विषय में सब सुन कर व्रत-सम्पादन किया।" सूत जी बोले-)

ज्यों-ही उस ब्राह्मण ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार नियमित रूप से व्रत आरम्भ किया, उसके सारे मित्र और सम्बन्धी अति-प्रसन्न हुए। एक बार एक लकड़हारा वहाँ आया और अपना लकड़ी का गट्ठर बाहर रख कर घर के भीतर प्रवेश किया और वह सब होते हुए देखा।

यद्यपि लकड़हारा बहुत प्यासा था, परन्तु ब्राह्मण जो कर रहा था, उससे प्रभावित हो कर उसने पूछा- "हे महात्मन् ! इस व्रत का नाम क्या है? इसे करने से क्या फल मिलेगा? कृपया मुझे यह सब विस्तार से बताइए।"

ब्राह्मण ने उससे कहा- "प्रियवर! यह सत्यनारायण का व्रत है। यह समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करता है। इससे मनुष्य की धन और समृद्ध बढ़ती है।"

लकड़हारा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपनी तृषा शान्त करके प्रसाद लिया, भोजन किया और घर चला गया।

फिर लकड़हारे के मन में स्वयं व्रत करने की इच्छा जाग्रत हुई। तदनुसार दूसरे दिन उसने लकड़ियों का गट्ठर सिर पर रख कर संकल्प किया - "आज गट्ठर की विक्री से जो-कुछ मुझे मिलेगा, पूरा सत्यनारायण व्रत के सम्पादन में व्यय करूँगा।" फिर उसने प्रस्थान किया।

उस दिन वह लकड़हारा ऐसी गली में गया जहाँ अधिक धनी लोग रहते थे और वहाँ उसने लकड़ियाँ बेचीं। उस दिन उसने उतने ही बड़े गडर से, अन्य दिनों की अपेक्षा अधिक धन प्राप्त प्राप्त किया। वह आनन्दमग्न हो गया और कमाये हुए धन से उसने केले, चीनी, घी, दूध तथा गेहूँ का आटा खरीदा और घर को लौटा।

तब उसने अपने सम्बन्धियों को आमन्त्रित करके पूरे विधि-विधान से सत्यनारायण व्रत सम्पन्न किया। इस महान् व्रत की महिमा से उसे धन-समृद्धि, पुत्र-पुत्रियाँ एवं सुख-शान्ति प्राप्त हुई। उसने जीवन-भर सुख भोगा और अन्त में सत्यपुर को प्राप्त हुआ।

इस प्रकार स्कन्दपुराण में वर्णित सत्यनारायण व्रत कथा का द्वितीय भाग समाप्त होता है।

तृतीय भाग

हे महामुनियो! मैं तुम्हें एक और कथा सुनाता हूँ। कृपया आप चित्त की एकाग्रता से सुनें।

प्राचीन काल में उल्कामुख नाम का एक राजा था। वह सत्यवादी और आत्म-संयमी था। वह नित्य मन्दिर जाता था और उदारतापूर्वक भेंट दे कर ब्राह्मणों को तुष्ट करता था। उसकी पत्नी जितनी सुन्दर थी, उतनी गुणवती भी थी। उस धर्मनिष्ठ दम्पति ने एक दिन भद्रशिला नदी के किनारे सत्यनारायण व्रत सम्पन्न किया।

जब वह राजा व्रत कर रहा था, तो साधु नाम का एक व्यापारी, जो धन से भरी हुई नाव ले कर व्यापार के उद्देश्य से जा रहा था, उसने राजा को व्रत सम्पन्न करते हुए देखा। उसने नाव किनारे की ओर बाँध दी। राजा के पास आ कर विनयपूर्वक पूछा- "हे सज्जन नृप! आप जो व्रत सम्पन्न कर रहे हैं, कृपया इस व्रत के विषय में बताइए और विस्तारपूर्वक इसकी विधि समझाइए। मैं व्रत के विषय में सब-कुछ जानने को इच्छुक हूँ।" राजा बोला- "श्रीमान्! हम सन्तान की कामना से श्री सत्यनारायण व्रत कर रहे हैं।"

राजा के वचन सुन कर व्यापारी बोला- "महाराज! मेरी भी कोई सन्तान नहीं है। मैं भी यह व्रत करके सन्तान का सुख भोगूँगा।"

व्यापार के काम से निवृत्त हो कर व्यापारी घर लौटा और अपनी पत्नी लीलावती को इस व्रत के विषय में बताया, उसकी उपस्थिति में ही उसने यह संकल्प लिया-"जब भी मेरे सन्तान होगी, तब मैं यह व्रत सम्पादित करूँगा।"

भक्तिमती पत्नी लीलावती ने अपने पति के साथ सहवास किया और वह गर्भवती हो गयी। दसवें महीने में एक दिन उसने कन्यारत्न को जन्म दिया। लीलावती और साधु अपनी कन्या को कलावती नाम से पुकारते थे। शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कलाओं की भाँति कन्या बढ़ने लगी।

तब लीलावती ने अपने पति के पास जा कर मधुर वाणी में कहा - "आपने यह संकल्प लिया था कि सन्तान की प्राप्ति होते ही व्रत सम्पन्न करेंगे। हमें वांछित फल प्राप्त हो गया है। अभी तक आपने व्रत क्यों नहीं प्रारम्भ किया है? व्यापारी ने उत्तर दिया- "प्रिय लीलावती! कलावती के विवाह के अवसर पर मैं व्रत करूँगा। तुम चिन्ता मत करो। शान्त रहो।"

एक बार फिर वह व्यापार के लिए नगर के बाहर गया। कलावती युवती हो गयी और उसके पिता ने उसके लिए योग्य वर खोजने हेतु दूत नियुक्त किया।

व्यापारी की आज्ञा पा कर एक दूत कंचन नामक नगर में गया। वहाँ से एक योग्य व्यापारी युवक चुन कर कलावती के पिता के पास लाया। वर सब प्रकार से योग्य और सुन्दर था। साधु ने बड़ी भव्यता के साथ, उस व्यापारी युवक के साथ कलावती का विवाह सम्पन्न कर दिया।

दुर्भाग्य से साधु सत्यनारायण व्रत के विषय में बिलकुल भूल गया, क्योंकि वह अपनी पुत्री के विवाह के उत्सव के आनन्द में निमग्न था। तब भगवान् सत्यनारायण उससे बहुत रुष्ट हो गये।

समय व्यतीत होता गया और साधु ने, जो व्यापार में अति-कुशल था, फिर अपने जामाता के साथ व्यापार के लिए प्रस्थान किया और समुद्र के किनारे रत्नापुरी में वे व्यापार करने लगे।

वे दोनों राजा चन्द्रकेतु के नगर में पहुँचे।

व्यापारी अपने संकल्पित वचन से च्युत हुआ था; अतः भगवान् सत्यनारायण ने रुष्ट हो कर उसे श्राप दिया- "यह व्यक्ति भारी विपत्ति और कष्टपूर्ण जीवन का सामना करे।"

उसी रात्रि को चोरों ने आ कर राजा के कोष से कुछ धन चुरा लिया और वे उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ ये व्यापारी थे। राजा के नौकरों ने चोरों का पीछा किया। चोर भयभीत हो कर धन व्यापारियों के सामने छोड़ कर दृष्टि से ओझल हो गये। राजा के नौकरों ने, जहाँ ये व्यापारी खड़े थे, वहाँ धन देख कर यह निश्चय किया कि ये दो व्यक्ति चोर हैं। दोनों के पाँवों में बेड़ी डाल कर वे उन्हें राजा के दरबार में ले गये।

नौकरों ने राजा से कहा- "हे स्वामिन् ! हमने चोर पकड़ लिये हैं और चुरायी गयी सम्पत्ति भी ले आये हैं। कृपया इस मामले की पूछताछ करके अपराधी को उचित दण्ड दीजिए।"

ज्यों-ही नौकरों ने यह कहा, राजा ने तुरन्त ही व्यापारियों को निर्दयतापूर्वक बन्दी करने का आदेश दिया। नौकरों ने राजा के आदेश का अक्षरशः पालन किया।

उन्होंने बहुत प्रार्थना की; परन्तु भगवान् सत्यनारायण की माया-शक्ति के कारण किसी ने उनकी प्रार्थना नहीं सुनी। राजा चन्द्रकेतु ने उनकी सारी सम्पत्ति का हरण करके अपने खजाने में रख ली। भगवान् सत्यनारायण के श्राप के कारण, साधु की पत्नी और पुत्री को भी कठोर संकट का सामना करना पड़ा। चोरों ने उनकी सम्पत्ति

लूट ली। लीलावती बीमार हो गयी। उसके मानसिक सन्ताप का कोई अन्त नहीं था। क्योंकि उसके पास खाने को अन्न तक नहीं था, उसे दर-दर भिक्षा माँगनी पड़ी।

कलावती भी भोजन के लिए इधर-उधर भटकती थी। एक दिन वह बहुत भूखी थी और एक ब्राह्मण के घर गयी। वहाँ सत्यनारायण व्रत सम्पन्न हो रहा था। वह वहाँ ठहर गयी और व्रत की समाप्ति तक जो-कुछ हो रहा था, देखा। उसने कथा सुनी और भगवान् से प्रार्थना की। उसने प्रसाद भी लिया और घर को लौट आयी। उस रात्रि को उसकी चिन्तित माँ ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसे बुला कर कहा- "प्रिय बेटी! इतनी रात्रि तक तुम कहाँ थी? तुम्हारे मन में क्या इच्छा है?"

तब कलावती ने निःसंकोच उत्तर दिया- "प्रिय माँ! ब्राह्मण के घर सत्यनारायण व्रत सम्पन्न हो रहा था, मैंने वह देखा, भगवान् की कथा सुनी और भगवान् का प्रसाद ले कर घर लौटी हूँ।"

पुत्री के वचन सुन कर लीलावती ने सत्यनारायण व्रत करने का संकल्प लिया। फिर उसने अपने मित्र एवं सम्बन्धियों को आमन्त्रित करके भक्ति-भाव से भगवान् का व्रत किया।

उसने भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना की- "हे भगवान्! हमारे समस्त अपराधों के लिए हमें क्षमा करें। मेरे पति और जामाता कुशलतापूर्वक, शीघ्र और प्रसन्नतापूर्वक घर लौटें।"

भगवान् लीलावती से प्रसन्न हुए, क्योंकि उसने पूर्ण भक्ति से व्रत किया था। उसी रात्रि को वह राजा चन्द्रकेतु के स्वप्न में प्रकट हुए और कहा- "तुमने जिन दो व्यक्तियों को बन्दी किया है, उन्हें छोड़ दो। प्रातः होते ही यह करो। उनका सारा धन लौटा दो। यदि तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन करोगे, तो तुम अपने स्त्री, पुत्रों और धन को खो कर नष्ट हो जाओगे। प्रातः होते ही व्यापारियों को मुक्त कर दो।" यह कह कर सत्यनारायण भगवान् अन्तर्धान हो गये।

सूर्य उदय होते ही राजा ने दरबार में आ कर अपने दरबारियों को स्वप्न का वर्णन किया। उसने दोनों व्यापारियों को तुरन्त छोड़ देने का आदेश दिया। नौकर व्यापारियों को मुक्त करके राजा के सामने ले गये।

दोनों व्यापारियों ने राजा को नमस्कार किया; किन्तु पूर्व-कर्मों का स्मरण करके अत्यन्त भयभीत हुए और उन्होंने अपना मुँह बन्द रखा।

राजा ने उन्हें इस स्थिति में देख कर कहा- "भाग्य के चक्र से आप लोगों को यह कठिन परिस्थिति सहनी पड़ी, अब आपको डरने की आवश्यकता नहीं है।"

राजा ने उनकी जंजीर खोल दी। उन्हें पहनने के लिए नये वस्त्र दिये गये और राजा ने उन्हें अति-प्रसन्न किया। उसने उनकी बहुत प्रशंसा की और उनका जितना धन लिया था, उसका दुगना करके उन्हें वापस दिया।

राजा ने उनसे बहुत सम्मानपूर्वक व्यवहार किया और कहा- "हे व्यापारियो! अब तुम प्रसन्नतापूर्वक अपने घर जा सकते हो।"

व्यापारियों ने राजा को नमस्कार करके विदा ली, उसकी प्रशंसा की और चले गये।

इस प्रकार स्कन्दपुराण में वर्णित श्री सत्यनारायण व्रत कथा का तृतीय खण्ड समाप्त होता है।

चतुर्थ भाग

व्यापारी साधु राजा से विदा हो कर तीर्थयात्रा को चला गया, ब्राह्मणों को प्रचुर दान दिया और घर की ओर प्रस्थान किया।

कुछ दूर जाने के पश्चात् श्री सत्यनारायण एक संन्यासी के रूप में प्रकट हुए और बोले- "हे व्यापारियो! तुम्हारी नाव में क्या है?"

चूँकि व्यापारी बड़े अभिमानी थे, वे हँसे और उपहासात्मक रूप से संन्यासी को उत्तर दिया- "हे संन्यासी! तुम्हें यह जानने की क्या आवश्यकता है कि नाव में क्या है? क्या तुम सम्पत्ति लूटना चाहते हो? इसमें पत्तियों एवं कूड़े-करकट के सिवाय कुछ नहीं है।"

संन्यासी ने ये शब्द सुने और बोले- "ऐसा ही हो जायेगा।" यह कह कर वह वहाँ से चले गये और कुछ दूरी पर खड़े रहे।

साधु ने अपने नित्य-कर्म सम्पन्न किये और यह देख कर आश्चर्यचकित हुआ कि नाव इस प्रकार बह रही थी मानो खाली हो! सामान की जाँच करने पर पाया कि धन के थैलों के स्थान पर उसमें केवल पत्तियाँ एवं कूड़ा-करकट था। वह बेहोश हो गया और जब चेतना में आया, तो फूट-फूट कर रोने लगा।

तब उसके जामाता ने कहा- "आप रोते क्यों हैं? संन्यासी ने शाप दिया है, इसलिए ऐसा हो गया है। उसमें जो चाहे करने की शक्ति है। अतः चलें और उनके चरणों में समर्पण कर दें। ऐसा करने से हमें अपना धन वापस मिल जायेगा।"

व्यापारी ने जामाता के वचनों पर ध्यान दिया तथा संन्यासी के पास जा कर प्रणाम किया और बोला- "हे महात्मन्! मैं एक भ्रमित मूर्ख हो कर, मैंने मूर्खता से आपको निरादरपूर्वक उत्तर दे दिया था। मेरे अपराध को क्षमा करके मेरी रक्षा करें।" उसने पश्चात्तापपूर्ण हृदय से प्रार्थना की।

तब संन्यासी वेशधारी भगवान् ने उसे सान्त्वना दी और कहा- "हे साधु ! तुमने मेरा पूजन करने का संकल्प लिया; परन्तु अपने वचन को तोड़ दिया-इस कारण से तुम ये सब विपत्तियाँ सह रहे हो।"

यह बात सुन कर साधु ने प्रार्थना की- 'हे भगवान्! अखिल विश्व तुम्हारी मायावी शक्ति से भ्रमित है। ब्रह्मा और इन्द्र जैसे महान् देवता तक तुम्हें समझने में असमर्थ हैं, फिर मेरा तो कहना क्या, जो तुम्हारी महती माया से मोहित एक मूर्ख है। हे भगवान्! अबसे मैं निरन्तर आपकी पूजा करूँगा। कृपया आप मेरे ऊपर दया करें। मेरी सारी सम्पत्ति लौटा दें और मेरी रक्षा करें।"

भगवान् इस प्रार्थना से प्रसन्न हुए। उन्होंने व्यापारी की इच्छा पूर्ण की और तुरन्त ही अन्तर्धान हो गये।

जब व्यापारी अपनी नाव पर लौटा, तो अपने धन के थैले पहले की भाँति सुरक्षित स्थिति में पाये। वह फिर यह सोचता हुआ घर की ओर बढ़ा कि भगवान् की कृपा से उसकी मनोकामना पूर्ण हो चुकी थी। वह अत्यन्त प्रसन्न था। अपने गन्तव्य स्थान के समीप पहुँचने पर उसने अपने जामाता से कहा- "वह सामने रत्नापुरी है। लीलावती और कलावती को अपने आने का समाचार देने के लिए सन्देशवाहक भेज दे।"

सन्देशवाहक नगर में पहुँचा और लीलावती के पास जा कर विनयपूर्वक बोला- "हे महिला! अपने जामाता और अन्य सम्बन्धियों सहित तुम्हारे पति आ गये हैं। नाव अभी किनारे लगी है।"

यह सुखद समाचार पा कर लीलावती अति-प्रसन्न हुई। कलावती उस समय सत्यनारायण व्रत में संलग्न थी। लीलावती ने उससे कहा कि जल्दी से व्रत पूरा करके उसके साथ चले। माँ-बेटी ने पूरी तरह से पूजा सम्पन्न की, किन्तु जल्दी में बेटी प्रसाद लेना भूल गयी।

इस भूल से भगवान् सत्यनारायण इतने रुष्ट हो गये कि उन्होंने व्यापारी और जामाता की नाव को समस्त सम्पत्ति सहित डुबो दिया। तट पर खड़े लोगों ने यह घटना देखी और वे विस्मयाकुल एवं भयभीत हो गये।

वे सभी दुःखी होने लगे। लीलावती अपनी पुत्री के लिए अत्यधिक दुःखी हुई और मन में सोचने लगी कि यह सब भगवान् सत्यनारायण का प्रभाव था, जिससे जामाता डूबे और नाव नष्ट हुई। भारी मन से उसने अपने दुःख में डूबी हुई पुत्री को समझाया।

कलावती को विश्वास हो गया कि उसका पति मृत्यु को प्राप्त हो गया था। अतः उसने पति की खड़ाऊँ ले कर सहगमन करने का (उसका अनुसरण करने का) निश्चय किया।

साधु ने कलावती की दयनीय स्थिति देखी और अत्यन्त दुःखी हो कर उससे बोला- "बेटी! यह सब भगवान् नारायण की माया के सिवाय कुछ नहीं है, अतएव आओ, हम तुरन्त ही अविलम्बपूर्वक पूर्ण वैभव और भव्यता से उनका पूजन करें।

भगवान् की पूजा का निश्चय करके उसने अपने भाई-बन्धु एकत्रित किये, उनके समक्ष अपना विचार प्रकट किया और अत्यन्त भक्ति-भाव से भगवान् की प्रार्थना करने लगा।

भगवान् ने उससे प्रसन्न हो कर कहा- "हे प्रिय साधु ! तुम्हारी बेटी मेरा प्रसाद लिये बिना अपने पति को देखने आ गयी। इस कारण तुम्हारी पत्नी अथवा तुम अपने जामाता को नहीं देख पाये। यदि वह घर जा कर प्रसाद ले और फिर वापस आये, तो सब-कुछ ठीक और शुभ हो जायेगा। उसे अपना पति वापस मिल जायेगा और वह सुखी होगी।"

आकाशवाणी सुन कर कलावती तुरन्त ही घर गयी और प्रसाद पा कर लौटी। जब वह उस स्थान पर पहुँची, तो तैरती हुई नौका पर अपने पति को सकुशल पाया। इस चमत्कार पर वह दम्पति तथा सभी मित्र-सम्बन्धी आनन्दित हुए। कलावती ने अपने पिता से कहा कि अब घर लौटने में अधिक विलम्ब न करें। अपनी पुत्री के ये शब्द सुन कर साधु ने अपने सम्बन्धियों को परम सन्तुष्ट करते हुए उसी स्थान पर सत्यनारायण व्रत सम्पन्न किया। फिर अपने सम्बन्धियों तथा अतुल सम्पत्ति सहित उसने घर के लिए प्रस्थान किया।

तब से ले कर साधु सदैव प्रति पूर्णिमा को एवं रविसंक्रमण दिवस को बिना चूके सत्यनारायण व्रत करता रहा। जब तक वह जीवित रहा, उसने पूर्ण सुख भोगा और अन्त में सत्यपुर प्राप्त किया।

इस प्रकार स्कन्दपुराण में वर्णित सत्यनारायण व्रत कथा का चतुर्थ भाग पूर्ण होता है।

पंचम भाग

हे पूज्य मुनियो! अब मैं आपको एक और कथा सुनाता हूँ। दत्तचित्त हो कर सुनो! एक बार तुंगध्वज नामक राजा अपनी प्रजा पर माता की भाँति दयालुता से राज्य करता था। एक दिन वह जंगल में गया और वहाँ कई जानवर मार डाले। एक बिल्व वृक्ष के नीचे कुछ ग्वाले मित्र-सम्बन्धियों सहित सत्यनारायण व्रत कर रहे थे। यद्यपि राजा यह जानता था, परन्तु वह न तो वहाँ गया और न उसने भगवान् को नमस्कार किया। वह राजसी अभिमान में चला गया।

तब ग्वाले राजा के पास प्रसाद ले कर गये। उसके सामने प्रसाद रख कर अपने पूजा-स्थान पर लौट गये, जहाँ सबने मिल कर अत्यन्त भक्ति-भाव एवं श्रद्धापूर्वक प्रसाद ग्रहण किया।

राजा ने प्रसाद नहीं लिया। वह सीधा अपने नगर को चला गया। भगवान् के रोष के कारण राजा के १०० पुत्र नाश को प्राप्त हो गये। उसकी सारी धन-सम्पत्ति का लोप हो गया। उसे केवल निर्धनता ही नहीं, बल्कि कई कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा।

राजा मन में सोचने लगा-"मुझे अपने राज्य और शक्ति का गर्व था। मैंने भगवान् के प्रसाद को व्यर्थ मान कर नहीं लिया, यद्यपि ग्वालों ने मुझे बड़े भक्ति-भाव से प्रसाद दिया था। भगवान् का रोष ही मेरी विपत्तियों और कठिनाइयों का कारण है। उसने ही यह सब-कुछ किया है। इसमें सन्देह नहीं है। मैं फिर से ग्वालों के पास जा कर पूर्ण गम्भीरता से व्रत करूँगा।"

राजा ने तुरन्त अपने विचार को क्रियान्वित किया। सत्यनारायण का व्रत करके वह धनवान् हो गया, उसके कई पुत्र हुए और जब तक वह जीवित रहा, सुख का अनुभव किया। अन्त में वह सत्यपुर अर्थात् सत्यलोक को गया।

जो कोई यह सत्यनारायण का व्रत करता है अथवा जो भगवान् के व्रत की कथा को सुनता है, उसे समस्त भौतिक समृद्धि एवं सम्पदा प्राप्त होती है। निर्धन धनी हो जाते हैं; जो बन्धन में हैं, वे मुक्त हो जाते हैं और कायर साहसी बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त उसकी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी और अन्त में वह सुख भोगने के लिए सत्यपुर को जायेगा। इस प्रकार मैंने तुम्हें सत्यनारायण व्रत के विषय में, उसकी आवश्यकता, विधि, महिमा और फल-सब-कुछ वर्णन कर दिया है।

विशेषकर इस कलियुग में यह सत्यनारायण का व्रत विशिष्ट फल प्रदान करता है। कलियुग में कुछ लोग कहते हैं-भगवान् सत्येश्वर हैं, कुछ सत्यनारायण, कुछ सत्यदेव कहते हैं। शाश्वत भगवान् सत्यनारायण इस कलियुग में कई रूप धारण करके अपने भक्तों की मनोकामना पूर्ण करते हैं।

यदि कोई व्यक्ति व्रत करने में समर्थ न हो, वह व्रत सम्पन्न होता देख ले अथवा व्रत कथा सुने, फिर भी वह भगवान् की कृपा से सारे पापों से मुक्त हो जायेगा।

इस प्रकार स्कन्दपुराण में वर्णित श्री सत्यनारायण व्रत का अन्तिम पंचम भाग पूर्ण हुआ।

परिशिष्ट २

परम सत्य का साक्षात्कार

एक वेदान्तिक कथा

एक युवक था, जिसका पिता राजा की सेना में कप्तान था। वह युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त हो चुका था। यह युवक पिता के द्वारा हुई सेवाओं के फलस्वरूप पारिश्रमिक लेने हेतु राजा से मिलना चाहता था।

राजभवन के लिए यात्रा लम्बी थी, मार्ग में उस युवक को लूट लिया गया और पीटा गया। फिर भी परिश्रान्त, दुर्बल हुआ वह युवक चिलचिलाती धूप में यात्रा पर आगे बढ़ता चला गया।

उस समय उसने स्नेहपूर्ण शब्दों में अपना नाम सुना। उसने घूम कर देखा, सड़क से दूर एक छायादार वृक्ष के नीचे एक सन्त बैठा था। उस सन्त का मुख प्रेम, करुणा और प्रकाश से चमक रहा था।

सन्त बोले- "हे युवक! तुम्हें विश्राम चाहिए। आओ, और मेरे पास बैठो।"

युवक ने उसकी कृपा का स्वागत किया और सन्त के पास आ कर बैठ गया। सन्त बोले-"तू प्यासा है" और हवा से श्वेत अमृत से भरी हुई एक सोने की झारी ले कर उस युवक को दे दी। युवक ने उसे अच्छी तरह पी लिया और स्फूर्तिवान् हो गया। उसने सन्त से पूछा कि सोने की झारी कहाँ से आयी?

सन्त ने उत्तर दिया "राजभवन से।"

"मैं वहीं जा रहा हूँ।" युवक बोला- "क्या वहाँ पहुँचने में आप मेरी सहायता कर सकते हैं?"

सन्त बोले-"मरणशील नृप मर रहा है और तू उसे नहीं मिल सकता। मैं तो अमर नृप की बात कर रहा हूँ और मैं तुम्हें वहाँ उससे मिलने में सहायता कर सकता हूँ, जहाँ से सोने की झारी आयी है।"

युवक सन्त के चरणों में गिर कर कहने लगा-"मुझे शीघ्र ही अमर नृप के राजभवन में ले चलो।"

सन्त बोले-"इस महल में जाने का रास्ता नहीं है। वह दिशा रहित है। उसके लिए कोई और प्रयास और कर्म करने की आवश्यकता नहीं है, केवल आन्तरिक शान्ति चाहिए। शान्त हो जाओ। अपने नेत्र बन्द कर लो। गहरी श्वास लो और भूतकाल के कष्टों और परेशानियों को भुला दो। तब तुम लयबद्ध उड़ान के लिए तैयार हो जाओगे।

"उड़ान है कि अपने-आपको चेतना की अन्तिम सतह तक डूबो दो। क्या तू जानता है कि तू कौन है? अपनी आत्मा की खोज करते रहो -"मैं कौन हूँ।" तून शरीर है न मन है। अन्तर्मुखी हो कर देखते रहो। शरीर और मन विवेक के लिए तेरे उपकरण हैं। तेरा सच्चा स्वरूप तो शरीर और मन से परे है। तू अमर राजा का पुत्र है।"

सन्त की वाणी रुक गयी। उसने अपना हाथ उस युवक के सिर पर रखा। युवक ने अनन्त प्रकाश से पूर्णरूपेण व्याप्त ब्रह्माण्ड का साक्षात्कार किया। उसने अपनी वैयक्तिकता को अनन्त चेतना, शाश्वत परमानन्द में लीन होते हुए अनुभव किया और परम सत्ता को अपना ही वास्तविक स्वरूप पाया।